CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेमू और उनका युग

डा० मोती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

954.02
ਮ ਵ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१६६०

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
विभाग 3654 C
पुस्तक क्र० संख्या 25
Museum Library, Lucknow

सर्वाधिकार सुरक्षित

954.02
म ह

मूल्य—५)

सजिल्द—६)

मुद्रक—नव भारत प्रेस, नादान महल रोड, लखनऊ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्यकालीन भारत के
अमर शहीदों
को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाण से आहत होकर वह मूर्छित न हो जाता तो बहुत संभव था कि पानीपत के दूसरे युद्ध में उसी को विजय श्री प्राप्त होती, जिससे कि तत्कालीन इतिहास की कुछ दूसरी गतिविधि हो जाती । आश्चर्य-सा जान पड़ता है कि एक व्यक्ति जो न तो हृष्ट-पुष्ट, न लम्बा-चौड़ा, न सवारी-शिकारी अथवा व्यायाम का व्यसनी, उतना शूरवीर, साहसी, पराक्रमी और सैन्य संचालक कैसे हो गया ।

हेमराज जैसे अद्वितीय व्यक्ति के जीवन-चरित्र की इतिहास लेखकों ने अभी तक उपेक्षा ही की । इसका कारण संभवतः यह होगा कि उसके संबंध में यथेष्ट सामग्री का अभी तक अभाव है और जो कुछ सामग्री प्राप्त है वह भी इधर-उधर बिखरी-सी रही । हर्ष का विषय है कि डा० मोतीलाल भार्गव जी ने बिखरी तथा अद्यावधि प्राप्त सामग्री का केवल संकलन ही नहीं वरन् उसको पृष्ठ भूमि के साथ पाठकों के सामने उपस्थित करने का स्तुत्य कार्य भी किया है । यह आवश्वक नहीं है कि उनकी प्रत्येक धारणा सर्व स्वीकृत की जाय । हेमू का वंश अथवा उसका देहली का सिंहासन पर आरूढ़ होना आदि ऐसे कुछ विषय हैं जिन पर पाठकों को कुछ शंकाएँ उत्पन्न हों । सब शंकाओं का अन्तिम निर्णय तो दुरसाध्य है किन्तु यह संभव है कि उद्यमी इतिहास प्रेमी तत्संबंधी सामग्री की खोज और ऊहापोह में दत्तचित्त हो सकें । इतना कुतूहल और ऐसी प्रेरणा भी यदि कुछ अध्यवसायी पाठकों में उत्पन्न हो जाय तो लेखक का प्रयत्न सफल मानना चाहिए । डा० भार्गव जी ने जो सामग्री एकत्रित की है और जिस प्रकार से उसको प्रस्तुत किया है उसके लिए इतिहास के प्रेमी उनके आभारी रहेंगे । आशा है कि इतिहास के पाठक पुस्तक का यथोचित मान करेंगे और हिंदी प्रेमियों को यह गर्व हो सकेगा कि हेमराज का जीवन-चरित्र सबसे पहले हिन्दी भाषा में ही प्रकाशित हुआ । दोनों भावों से प्रेरित होकर मैं लेखक को सहर्ष बधाई का पात्र समझता हूँ ।

लखनऊ
७-३-६०

रामप्रसाद त्रिपाठी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो शब्द

मध्यकालीन भारत के विलक्षण प्रतिभाशाली सेना-नायक हेमू के विषय में अन्वेषण की ओर अनेक लेखक गत सौ वर्षों से अग्रसर व प्रयत्नशील रहे। परन्तु यदाकदा लेखादि के अतिरिक्त समस्त उपलब्ध सामग्री का संकलन एक स्थान पर न हो पाया। स्वयं हेमू के वंशजों में से साधू धर्म मित्र कानौड निवासी एवं मेजर मनोहर लाल जी ने इस ओर सराहनीय कार्य किया। इधर कुछ वर्षों से उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्रीयुत कन्हैया लाल मानिकलाल मुंशी जी ने हेमू विषयक अन्वेषण की ओर पुन: ध्यान दिलाया, और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना से इस कार्य को सम्पन्न करने का परामर्श किया। डा० सक्सेना के आदेशानुसार तथा प्रयाग निवासी पं० ज्वाला प्रसाद भार्गव के आग्रह पर मैंने यह भार ग्रहण किया।

गत चार वर्षों के सतत परिश्रम के उपरान्त इतनी सामग्री संकलित हो सकी कि उसको पुस्तक का रूप दिया ज़ा सके। इस कार्य में मुझे न्यायमूर्ति पं विष्णु दत्त भार्गव, व श्रीयुत कृष्ण सहाय जी इलाहाबाद व श्री राजेन्द्र बहादुर रिसर्च एसिसटेन्ट स्वतंत्रता संग्राम इतिहास समिति लखनऊ से पर्याप्त सहायता मिली। उनका मैं सदैव ऋणी रहूँगा।

संकलित सामग्री का उपयोग करने व उसका ऐतिहासिक पृष्ठि भूमि में मूल्यांकन करने में मुझे श्रीयुत के० एम० मुंशी; डा० राम प्रसाद त्रिपाठी, प्रसिद्ध इतिहास कार, अध्यक्ष हिन्दी समिति लखनऊ, व भूतपूर्व उपकुलपति सागर विश्वविद्यालय; श्रीयुत कृष्णदयाल भार्गव, डारेक्टर नेशनल आरकाईव्ज़, नयी दिल्ली; तथा डा० सक्सेना से समय समय पर जो परामर्श मिले उनसे अन्वेषण का कार्य सरल होता गया। यह सब धन्यवाद के पात्र हैं। डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना ने तो अपना अमूल्य समय देकर पाण्डुलिपि को आद्योपान्त देखा व उसमें संशोधन भी किये इसके लिए मैं उनका बहुत आभारी हूँ। हिन्दी संस्करण प्रस्तुत करने में मेरे लघु भ्राता जवाहर लाल सचिवालय उ० प्र० लखनऊ ने जो कार्य किया व सहायता की वह सराहनीय है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुस्तक के लिखने एवं प्रकाशन कराने के सम्बन्ध में मुझे जो प्रेरणा व सहायता पं० ज्वाला प्रसाद जी प्रयाग से मिली उसे भुलाया नहीं जा सकता। बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का इतना शीघ्र प्रकाशन उन्हीं के अनवरत प्रयत्न का फल है।

प्रकाशकों व मुद्रकों ने इतनी शीघ्रता से पुस्तक मुद्रित कराके पाठकों के हाथों में पहुँचाया यह भी प्रशंसनीय है।

८—३—१९६०.

मो० ला० भार्गव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

VEER HEMU

From an old portrait preserved by Hemu's descendents at Rewari

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-प्रवेश

भारतीय इतिहास का कौन ऐसा विद्यार्थी होगा, जो हेमू व अकबर के नाम से परिचित न हो। परन्तु अभी तक किसी भी समकालीन अथवा आधुनिक इतिहासकार ने मुगल सम्राट अकबर के मुख्य प्रतिद्वन्दी हेमू अथवा हेमराय विक्रमादित्य के विषय में उपलब्ध सामग्री के संकलन करने का प्रयास नहीं किया। जिन इतिहासकारों ने हेमू के विषय में लिखा भी तो वह नहीं के बराबर है। इसके विपरीत समकालीन वर्णनकर्ताओं ने हेमू के संबंध में ऐसी असत्य, भ्रमात्मक तथा अनिश्चयात्मक बातें लिखी हैं, कि ऐतिहासिक तथ्य विलुप्त से हो गए हैं। इन्हीं वर्णनों के आधार पर मध्यकालीन तथा आधुनिक इतिहासकारों ने हेमू की जीवनी तथा घटना चक्रों पर अपना मत प्रकट किया है, कोई हेमू की वंशावली तथा पितृपरम्परा के विषय में अपना अज्ञान प्रकट करता है; तो कोई अपनी अल्प योग्यता प्रदर्शित करते हुए हेमू को "बक्काल" लिख कर अपना वर्णन समाप्त करता है; कोई उसको एक वणिक का कार्य करते हुए दिल्ली की गलियों में घूमने वाला एक साधारण व्यक्ति समझता है। परन्तु वस्तुतः १६ वीं शताब्दी का अद्वितीय व आश्चर्यजनक प्रतिभाशाली सेनानायक, तथा हिन्दू व अफगानों की असंख्य सेना का संगठन कर्त्ता, इन वर्णनों का इतिहासकारों का अज्ञानतावश शिकार बन गया है क्योंकि ऐतिहासिक वास्तविकता तो इनसे कहीं भिन्न है।

पानीपत के तीन युद्ध —

हेमू विषयक-उपलब्ध सामग्री में सबसे अधिक वर्णन पानीपत के द्वितीय युद्ध का मिलता है। परन्तु इस द्वितीय युद्ध की महानता तथा जटिलता को समझने के लिए पानीपत के तीनों युद्धों का ज्ञान आवश्यक है। प्रमुखता व महत्व में पानीपत के तीनों ही युद्ध अद्वितीय हैं। पानीपत के प्रथम युद्ध में १५२६ ई० में भारत में तैमूर वंशीय मध्य एशिया निवासी मुगलों का आक्रमण हुआ, जिसको अफगानों ने रोकने का प्रयत्न किया। सन १५५६ ई० में मुगलों को भारत से बाहर निकल जाने से, हेमू की आकस्मिक मृत्यु ने बचाया। इसी प्रकार १७६१ ई० में पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों तथा मुगलों को विदेशी आक्रमणकर्त्ता ने पराजित किया। तीनों बार रणभूमि का चुनाव आकस्मिक था अथवा जान-बूझकर किया गया था, कहना कठिन है; परन्तु एक बात तो स्पष्ट है कि तीनों बार उस रणभूमि में विजय-श्री विदेशियों के हाथ में रही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानीपत के तीनों ऐतिहासिक युद्धों की प्रकृति और स्वरूप प्रकट करते हैं कि संघर्ष ने, एक ओर भारतियों तथा दूसरी ओर विदेशी आक्रमणकारी के मध्य एक सीधे युद्ध का आकार धारण किया। भारतियों का तात्पर्य, हिन्दू व मुसलमानों दोनों से हैं। प्रथम दो युद्धों में अफगान भारतीय पक्ष से लड़े तृतीय में विदेश से आए हुए मुगलों ने अपने भारतीयकरण के पश्चात मराठों से मिलकर अहमद शाह अब्दाली से युद्ध किया।

पानीपत का द्वितीय युद्ध—

उपरोक्त दृष्टिकोण को सामने रखते हुए हेमू तथा मुगलों के मध्य हुआ, पानीपत का द्वितीय युद्ध और भी अधिक महत्वपूर्ण है। उसका वास्तविक स्वरूप असत्य कथनों के मध्य दृष्टि से ओझल सा हो गया है। सन १५५६ ई० में हेमू का यथार्थ कार्य भाग अब भी रहस्यमय है, और आकस्मिक पाठक को उसके उज्जवल उत्थान और वीरतापूर्ण संघर्ष का संकेत मात्र मिलता है। परन्तु जैसे-जैसे वर्णन सम्मुख आते हैं, हेमू व अफगानों के पारस्परिक सम्बन्ध का आभास मिलता है। जिन विशेष परिस्थितियों के कारण हेमू २२ युद्धों का विजेता हुआ, तथा दिल्ली जीत कर सम्राट बना, उनकी केवल कल्पना ही हो सकती है। राजपूतों व अफगानों का हेमू को किस प्रकार इतना सहयोग प्राप्त था, यह उसकी महानता का द्योतक है। मुगलों के प्रतिद्वन्दी सैनिकों में केवल एक ध्येय प्रधान था, कि किसी प्रकार विदेशी आक्रमणकारियों को भारत वर्ष से निकाल दिया जाए। हिन्दुओं में यह भावना होना स्वाभाविक ही थी परन्तु शेरशाह के समय से ही अफगानों में भी यह भावना ओत-प्रोत थी। १५५६ ई० में अकबर की विजय के उपरान्त भी मुगलों को अफगानों से लगभग २० वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा। हेमू व अन्य अफगान सेना-नायकों में आपसी वैमनस्यता व ईर्ष्या की कथाएं कल्पित ही जान पड़ती हैं, क्योंकि द्वितीय पानीपत के पश्चात् भी अदली के गुलाम तथा हेमू के सेना-नायक अफगान मुगलों से संघर्ष करते रहे, जैसे हाजी खां मेवाती तथा संग्राम खां।

प्रथम प्रयास—

ऐसे फुटकर वर्णनों के आधार पर हेमू की वास्तविक महत्ता को समझना, समस्त उपलब्ध सामग्री का एक बार एकत्रीकरण तथा अध्ययन किए बिना, कठिन जान पड़ता है। इसलिए प्रथम प्रयास में समकालीन तथा मध्यकालीन समस्त वृत्तान्त कर्ताओं के उद्धरणों का संकलन करने का प्रयत्न किया गया है। इसका मुख्य ध्येय यह है कि एक बार सब सामग्री संकलित हो जाने से जो हेमू की जीवनी व कृतियों का आभास मिलेगा, उस पर आगे गवेषणा हो सकेगी। अस्तु, ऐतिहासिक तथ्य संकलन में यह प्रथम पग है, अन्तिम नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामग्री स्रोत—

इस पुस्तक में प्रयुक्त सामग्री निम्नलिखित स्रोतों से संग्रही है—

१—समकालीन वृत्तान्तकारों के फारसी हस्तलेखों के अनुवाद।

२—अफगानों के विविध इतिहासों के अनुवाद।

३—अन्य विविध वृतान्तकर्ता, यात्री तथा विदेशी आगन्तुक।

४—राधाबल्लभी सम्प्रदाय की हिन्दी में सुरक्षित हस्तलिखित पुस्तक "अनन्य रसिक माल" की दो प्रतियां।

५—हेमू के वंशजों द्वारा प्रदत्त फुटकर सामग्री।

फारसी हस्तलेखों के अंग्रेजी अनुवाद—

सबसे प्रमुख समकालीन वृत्तान्त, जो हेमू और उसके युग के विषय में सामग्री उपलब्ध कराते हैं, अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फजल द्वारा दिए गए हैं। उसको वे सब सुविधाएं प्राप्त थीं, जो एक पदाधिकारी अभिलेख-रक्षक को प्राप्त हो सकती थीं। उसने प्रख्यात परिवार के प्राचीन सदस्यों से और राज्य के सेवकों से सामग्री प्राप्त की। वह स्वयं कहता है—मैंने बुद्धिमान, सत्यवादी वृद्ध पुरुषों तथा तीव्र मस्तिष्क वाले एंव उचित कार्य करने वाले युवकों, दोनों की जांच-पड़ताल की और उनके कथनों को लिपिबद्ध कर लिया। सूबों के लिए शाही आज्ञा निकाली गई कि वे व्यक्ति जिनको अपनी पूर्व सेवाओं के कारण विश्वासपूर्वक अथवा मिश्रित संदेह पूर्वक, भूतकाल की घटनाएं याद हों, अपनी टिप्पणियों और स्मरण-पत्रों की प्रतिलिपियां बनाएँ, और उनको दरबार में प्रस्तुत करें। उसने मध्यकालीन भारत के विषय में सूक्ष्मतम विवरण दिया है। उसकी कृतियाँ मौलिकता एवं ऐतिहासिक महत्व में बहुत ऊँची है। उसकी दो स्मरणीय कृतियाँ हैं—(१) अकबर नामा जो एच० बेवरिज द्वारा अनुवादित है, और (२) आइन-ए-अकबरी अर्थात् अकबर के विधि-नियम, जिसका अनुवाद ब्लाचमैन तथा जैरेट द्वारा तीन खण्डों में किया गया है। अबुल फजल द्वारा छोड़े गए अधिकृत वर्णनों के अतिरिक्त, अकबर के शासन-काल की दो अन्य प्रमुख कृतियां हैं—तबाकात-ए-अकबरी (निजामुद्दीन द्वारा लिखित); और अल बदाऊनी के नाम से प्रसिद्ध अब्दुरकादिर बीन महुकशाह की मुन्तखाब-उत्-तवारीख। प्रथम का अनुवाद बी० डे द्वारा तथा दूसरी का रैन्किगं व लोवे द्वारा दो भागों में किया गया है।

अबुल फजल की कृति का मूल्यांकन करते हुए विन्सेट स्मिथ ने कहा है—"अबुल फजल की किताब में ऐतिहासिक विवरण, कठिन एवं अलंकारमय वर्णन के ढेर में छिप गया है, और अपने नायक का लज्जाहीन प्रशंसक—लेखक कभी-कभी सत्य को छिपाता है, या कभी-कभी जानबूझ कर उलट भी देता है"।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"जान बूझकर सत्य को उलट देने" के उसने कुछ प्रसिद्ध उदाहरण दिए हैं, जो निम्नलिखित हैं—(१) अकबर की जन्म तिथि को, उसके नामकरण का वर्णन । (२) असीरगढ़ पर अधिकार होने का वर्णन । इनके अतिरिक्त जहां तक हेमू का समायोजन है, उसकी उत्पत्ति विषयक विवरण एक ऐतिहासिक सत्य के स्थान पर वृतान्तकारों के राजनैतिक पक्षपात और पूर्व पक्षी ढंग का दिग्दर्शन कराते हैं । उसके द्वारा किये गए हेमू की मृत्यु का वर्णन का खंड़न जहाँगीर सदृश लेखक ने अपने सर्वाधिक अधिकृत स्मृति लेखों में किया है । जहाँ तक तिथि-निर्धारण का सम्बन्ध है, समकालीन उपलब्ध अभिलेखों में केवल अबुल फजल का अभिलेख अधिकृत है, लेकिन कुछ स्थान पर तिथियाँ पूर्णतः संदेह से मुक्त नहीं हैं । हेमू के उज्जवल उत्थान से सम्बद्ध सबसे प्रमुख घटना, उसका दिल्ली पर अधिकार है जो ६ अक्तूबर १५५६ ई० को किया गया कहा जाता है और पानीपत का युद्ध ५ नवम्बर १५५६ ई० को । इस प्रकार हेमू ने केवल २९ दिन शासन किया और तारदी वेग खां २६ जनवरी १५५६ ई० से ६ अक्तूबर १५५६ ई० अर्थात लगभग ९ मास तक दिल्ली का गवर्नर था । आश्चर्य है कि इस लम्बी अवधि में, सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् भी अकबर कालानौर से दिल्ली न आ सका । हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् के अबुल-फजल द्वारा दिए गए विवरण इतने विच्छिन्न हैं तथा २९ दिन के विवरण इतने असंख्य हैं कि दिल्ली पर हेमू के अधिकार तथा उसके सिंहासनारूढ़ होने की ठीक तिथियों के सम्बन्ध में एक उचित संदेह उत्पन्न होता है । कहा जाता है कि हेमू ने सिक्के घड़वाए थे, पर प्रकाश में अभी कोई नहीं आया । यदि एक सिक्का भी उपलब्ध हो जाए तो वह न केवल १६ वीं शताब्दी के प्रख्यात वीर और उसके दिल्ली के शासन पर, वरन् अकबर के दरबारी इतिहासकार के सत्य और यथार्थता पर प्रकाश डाल सकेगा ।

विन्सेट स्मिथ आगे कहता है—"फिर भी, गंभीर और प्रत्यक्ष दोषों के होते हुए भी "अकबरनामा" अकबर के शासन के इतिहास की नींव के रूप में माना जाना चाहिए । इसकी तिथि-निर्धारण निजामुद्दीन और बदाऊनी द्वारा लिखित प्रतिद्वंदी पुस्तकों से, अधिक सही और विवरण पूर्ण है, और यह उनकी अपेक्षा बाद की तिथि तक की कथा का वर्णन करता है ।" वह उच्चतम प्रशंसा का पात्र है जैसा कि स्मिथ आगे चलकर कहता है—"यूरोप तक में आधुनिक-तम युग तक इस प्रकार का अधिकृत संग्रह पाना कठिन होगा............... ।" अकबर पर अल-बदायूनी की कृति अधिकतर निजामुद्दीन की तबाकत-ए-अकबरी पर आधारित है, जिसका भारतीय मध्यकालीन इतिहासकारों में एक ऊँचा स्थान है । वह अकबर की बहुत आलोचना करता है यहाँ तक कि जहांगीर के सिंहासनारूढ़ होने तक उसकी कृति को गुप्त रखना पड़ा । लेकिन वह हेमू के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रति उतना ही आलोचनात्मक और शत्रुतापूर्ण है, जितना अबुल फजल; अतएव उसकी कृति से हेमू के जीवन वृतान्त पर कोई नवीन प्रकाश नहीं पड़ता है। केवल उससे हेमू के तथा अदेली के उन अफगान दासों के, जो १५५६ ई० में हेमू की मृत्यु के उपरांत भी अकबर से संघर्ष करते रहे थे, विषय में कुछ विवरण प्राप्त हो जाते हैं।

तबकात-ए-अकबरी अथवा अकबर-शाही, जो तारीख-ए-निजामी के नाम से प्रसिद्ध है, अकबर के शासनकाल के प्रथम ३९ वर्षों का (अर्थात् १५९३-९४ ई० तक का) विवरण देती है। इसका तिथि-निर्धारण दोषयुक्त तथा विवरण प्रमुख घटनाओं से रहित कहा जाता है। जो हो, कृति को अल-बदायूनी और एक अन्य मध्यकालीन लेखक फिरिश्ता द्वारा व्यवस्थित बनाया गया है। फिरिश्ता के कथनानुसार "उन सब इतिहासों में जो उसने देखे, पढ़े, यही एक ऐसा है जो उसे पूर्ण मिला।" इस पुस्तक का अनुवाद इलिएट व डाउसन द्वारा किया गया है।

फिरिश्ता की पुस्तक में दक्षिण के राज्यों का विशद इतिहास तथा शेष भारत का सामान्य वर्णन किया गया है। उसके इतिहास से हेमू और अफगानों के विषय में प्रमुख विवरण उपलब्ध है। हस्तलेख का अनुवाद अंगरेजी भाषा में जान ब्रिग्स द्वारा किया गया है, जो "हिस्ट्री ऑव दि राइज ऑव दि मोहम्मदन पावर इन इंडिया टिल दी इयर ए. डी. १६१२" (४ भाग-१८२९) के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) अफगान स्रोत—

अकबर के दरबारी इतिहासकारों और अन्य समकालीन लेखकों द्वारा छोड़े गए अभिलेखों के अतिरिक्त, अफगानों पर अनेक कृतियाँ संतति को प्राप्त हुई है। अकबर के शासनकाल में १५९५ ई० के लगभग अहमद यादगर द्वारा लिखित 'तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना' में हेमू की मृत्यु तक का विस्तृत वर्णन दिया है। १५५६ ई० में पानीपत के दूसरे युद्ध के लिए तथा हेमू के बलिदान के लिए यह एक अच्छा अधिकृत हस्तलेख है। अफगानों का दूसरा इतिहास, जिसमें से हेमू की विजयों से संबंधित विवरण लिये गए हैं, 'मखजन-ए-अफागना' अर्थात् 'अफगानों का इतिहास' के नाम से नियामतउल्ला द्वारा लिखा गया था, जिसका अंगरेजी भाषा में अनुवाद डार्न द्वारा किया गया है। नियामतुल्ला की इसी नाम की एक अन्य कृति भी है, जिसका शीर्षक है तारीख-ए-खान-ए-जहान लोदी-वा-मखजन-ए-अफ़ागना। मौलिक हस्तलेख, लंदन में 'कामन वैल्थ रिलेशन्स आफिस'—Commonwealth Relations Office, London. में सुरक्षित रखा कहा जाता है। अब्बास सरवानी द्वारा लिखित तारीख-ए-शेरशाही तथा निजामुद्दीन की 'तबकात-ए-अकबरी' से उसने बड़े परिमाण में सामग्री उधार ली है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अब्बास सरवानी द्वारा लिखित 'तारीख-ए-शेरशाही' में शेरशाह और अफगान बादशाहों का बहुत अधिक एवं विशद वर्णन है। यद्यपि हस्तलेखों में हेमू से संबंधित विवरण उपलब्ध नहीं है, परन्तु उनसे वह वास्तविक पृष्ठ भूमि प्राप्त हो जाती है जिसकी परिस्थितियों ने हेमू को अपनी प्रतिभा दर्शाने का एक अवसर प्रदान किया। यह भी शेरशाह की मृत्यु के लगभग ४० वर्ष पश्चात् अकबर के आदेशों से लिखी गयी। अफगानों के उपर्युक्त इतिहास के अतिरिक्त अबदुल्ला द्वारा लिखित एक अन्य हस्तलेख तारीख-ए-दाऊदी है, जिसमें हेमू के सहायकों के विषय में कुछ विवरण दिया हुआ है।

(३) अन्य स्रोत—

उपर्युक्त हस्तलेखों के अतिरिक्त हुमायुं की बहिन गुलबदन बेगम का हुमायुं-नामा, जिसका अनुवाद श्रीमती वेवरिज द्वारा किया गया है, १५४० ई० में हुमायुं के निष्कासन तथा उसके विभिन्न प्रदेशों में घूमने-फिरने का विवरण देता है। हुमायुं के एक व्यक्तिगत सेवक जौहर द्वारा अकबर के समय में लिखित ताजकीयत-उत-वाकियात भारत से मुगल सम्राट के निष्कासन और उसकी हिंद में वापसी का कुछ विवरण मिलता है। जहाँगीर नामा में संग्रहीत जहाँगीर के स्मृति लेख अकबर के शासन काल की विविध घटनाओं और स्वरूपों पर प्रकाश डालते हैं। हेमू की हत्या के विषय में उसका प्रमाण विश्वासकारी है। ये व्यक्तिगत स्मृति-लेख अधिकतर स्वयं उसके द्वारा अपने शासन काल के प्रथम १८ वर्षों में लिखे गए और बख्शी, मुहम्मद खाँ द्वारा शासन के १९ वें वर्ष में। इस कृति का अनुवाद अंगरेजी भाषा में रोजर्स द्वारा तथा हिन्दी में श्री बृजरत्न द्वारा—नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण-१९५७ में किया गया है।

कुछ ईसाई मिशनरियों ने, जिन्होंने अकबर के दरबार में शरण ली थी, और विदेशी यात्रियों ने जो उस समय भारत में आए थे, घटनाओं तथा उनके परिणामों का आँखों देखा वर्णन किया है। उनमें से कुछ ने राजधानी में प्रचलित सूचनाओं को अपने कथनों का आधार बनाया है। जान कोविया अफ फोन्सो द्वारा Jesiut Letters and Indian History (१९५५) में प्रकाशित जेसियट अभिलेखों में और डी-लायत के भारत के वर्णन तथा Fragment of Indian History—१६२५ ई० में अकबर और जहाँगीर के शासनों का रूचिकर विवरण दिया हुआ है। डी-लायत द्वारा हेमू की मृत्यु के विषय में छोड़े गए विवरण पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व के हैं।

(४) हिन्दी स्रोत—

हिन्दी हस्तलेखों से बड़ी संख्या में उपलब्ध प्रमाणों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। अधिकतर समकालीन लेखक या तो उनके अस्तित्व से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही अनभिज्ञ थे, और या उन्होंने उन पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। जैसा कि अकबर की जीवनी के लेखक विन्सेंट स्मिथ ने कहा है:—

'कला का एक रूप माना जाने वाला, तथा हिन्दी व फारसी भाषा में लिखित, साहित्य ने अकबर के शक्तिसम्पन्न एवं सफल शासन द्वारा सब प्रकार के जनकार्यों में प्रोत्साहन भरने में योग दिया। डा० एफ० डब्ल्यू० टामस के मतानुसार १६५० ई० के लगभग महास ठाकुर द्वारा गद्य एवं पद्य में संस्कृत भाषा में लिखित अकबर के शासन के एक भाग का भी इतिहास है। (Mackenzie Collection, India Office जो अब Commonwealth Relations Office, London में है। Eggeling, Catal—संस्कृत हस्तलेख भाग ७-१९०४, १५७३ संन ४१०६ लाइब्रेरी संख्या २२७५ है : हस्तलेख २२८ पृष्ठों के हैं, जिनका माप १२½ × ५ इंच है)

राजस्थानी हिन्दी-डिंगल में भाट संबंधी साहित्य राजपूत राजाओं और युवराजों के व्यक्तिगत पराक्रम-कार्यों एवं वीरतापूर्ण आक्रमणों से संबंधित विवरण से पूर्ण है। इसके पश्चात् १२०० ई० और १६०० ई० के मध्य हिंदी में भक्तिभावपूर्ण कविता में समकालीन भारत के संत कवियों द्वारा किए गए वर्णन प्राप्त होते हैं। उनके द्वारा उनकी कृतियों में उल्लिखित सही नाम और स्थान तथा उनकी रचना की तिथियों का परीक्षण करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया है। फिर भी, यदि उनकी रचना की तिथियों का परीक्षण किया जाए, तो तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक स्थिति के संबंध में वृहत् सामग्री उपलब्ध हो जायगी। ये स्रोत न तो तिथि निर्धारण और न ही वंशावली संबंधी विवरणों से भर पूर है, लेकिन हिन्दुओं व मुसलमानों के संबंध, और युद्ध में लीन विभिन्न संप्रदायों एवं धर्मों में मेल कराने तथा शिथिल हिंदू जाति में एक नवीन जीवन का संचार करने के लिए किए प्रयासों को दर्शाने के लिए वे मूल्यवान हैं। कबीर, सूर और तुलसी महत्वपूर्ण और रहस्योद्घाटक अध्ययन की सामग्री उपलब्ध करते हैं।

जहाँ तक हेमू और उसकी पितृ परंपरा का संबंध है। अकबर के समकालीन, वृन्दाबन के श्री हित हरिवंश के राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त भगवत मुदित कवि द्वारा छोड़ी गई कृतियां एक अच्छा स्रोत है। भगवत मुदित द्वारा रचित रसिक अनन्य माल के ऐसे दो हस्तलेखों में रिवाड़ी के पूरनदास और नवलदास द्वारा वृन्दाबन आकर राधावल्लभी मत को अंगीकार कर लेने का वर्णन है। श्री हित हरिवंश १५३३ ई० में (१५९० वि० संवत फाल्गुन एकादसी) वृन्दावन पहुँचे; और जैसे ही वे वहाँ स्थायी रूप से बसे उनके शिष्यों के आगमन का ताँता लग गया। रसिक अनन्य माल के लेखक ने हेमू के पिता पूरनदास और उनके सहयोगी नवलदास का, जिन्होंने अकबर के हाथों

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेमू की जाति के विनाश को बचाने में योग दिया था, श्रीहित हरिवंश के शिष्य बनने का अच्छा विवरण दिया है। हाल ही में प्रकाशित पुस्तक—राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—में श्री विजयेन्द्र स्नातक ने श्रीहरिवंशजी की ख्याति फैलने तथा शिष्यों की संख्या बढ़ने का वर्णन इन शब्दों में किया है—

"इसी समय आपने कई श्रद्धालु भक्तों को अपना शिष्य बनाया। इन शिय्यों में भौगाव के अधिपति नरवाहन तथा रेवाडी के श्रीनवलदास और पूरनदास का नाम उल्लेखनीय है।

हेमू के वंशजों द्वारा प्रदत्त सामग्री—

गत ४० वर्षों में हेमू—विषयक सामग्री संकलित करने का जो प्रयास किया गया है, उसके फलस्वरूप कई वंशावलियाँ (शजरे-वंशवृक्ष) तथा अनेक प्रपत्र प्राप्त हुए हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण हेमू के भतीजे महीपाल के पुत्र चौधरी नाथमल के नाम दिया गया अकबर का शाही फरमान है। इसकी मूल प्रति सन १९२१ ई० में जयपुर निवासी साधू धर्म मित्रकिशोरीशरण के पास थी, उन्होंने अपनी छोटी सी पुस्तक 'हेमू वीर' में प्रकाशित भी किया है। इस फरमान के द्वारा हेमू के पौत्र नाथमल को अकबर ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों से राजीनामा करने के लिए सन्त नवलदास के आग्रह पर, नारनौल सरकार में परगना कानौड़ की कानूनगोई तथा ११०००) वार्षिक आय की जागीर दी थी। हेमू के वंशजों तथा जाति बन्धुओं को अकबर के रोष से बचाने तथा उनको क्षमा प्रदान कराने का श्रेय सन्त नवलदास को था, जो राधावल्लभी संप्रदाय के एक भक्त थे। इस घटना सम्बन्धी वर्णनों को अनन्य रसिक माल नामक पुस्तक से लिया गया है। इससे अकबर, हेमू, उनके वंशज, महिपाल, नाथमल आदि के विषय में तथा रिवाड़ी से आए हेमू के पिता पूरनदास व उनके साथी नवलदास के राधावल्लभी संप्रदाय से सम्मिलित होने का विशद वर्णन है। साधू धर्म मित्र ने १९२८ ई० में इस विषय में भी बड़ी छान-बीन की थी और पटियाला नरेश के यहाँ कानौड स्थित कानूनगोई व नानकार के हक सम्बन्धी कागजात व मिस्लों की दरबार में छान-बीन कराई थी उससे यह पता चला कि यह हक पटियाला नरेश के शासन काल में भी कुछ काल तक मान्य रहा। धीरे-धीरे कम हो गया। इस जागीर के अतिरिक्त पटियाला राज्य (पूर्वी पंजाब) नारनौल स्थित ढोसी पर्वत पंचायती इमारत व मन्दिरों में भोग इत्यादि के लिए कुछ धन पटियाला सरकार प्रदान करती रही।

कानौड उपनाम महेन्द्रगढ़ में अब भी ४ या ५ घर दूसरों के हैं, जो अपना गोत्र गोलव तथा शकरा कुलदेवी बताते हैं। यही गोत्रादि हेमू के वंशजों के हैं। अधिकतर वंशज रिवाड़ी तथा अन्य स्थानों पर जा बसे हैं। यह अपने को अब भी कानोडिये कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेमू के वंशज—

इस विषय में जो शजरे तथा वंशावली उपलब्ध हैं, उनसे महीपाल के वंशजों का पता चलता है । हेमू की मृत्यु निःसन्तान हुई तथा उनके भाई राय झण्डोराव तक पता चलता है। महीपाल के पुत्रों में त्रिलोक चन्द्र राय, नारायणदास तथा चौधरी नाथमल थे। महीपाल का नाम समकालीन इतिहासकारों के लेखों में मिलता है। इस प्रकार तीन के लेख बताये जाते हैं, उनमें से दो के अनुसार वह हेमू का भतीजा प्रमाणित होता है। उनके पुत्र नाथमल को प्रदत्त फरमान की मूल प्रति साधू धर्म मित्र ने प्रस्तुत की। यह धर्म मित्र स्वयं अपने को त्रिलोक चन्द्र के वंशजों की १३ वीं पीढ़ी में बताते थे। हस्तलिखित पुस्तकों में शिकस्त लिपि में महीपाल लिखा हुआ था। साधू धर्म मित्र की छान बीन के अनुसार नकल करने वालों ने "थरपाल" लिख दिया। यह कोई शब्द नहीं है। महीपाल की सन्तानों के पुराने वंश वक्ष में—मूरिस-आला—सर्वश्रेष्ठ लिखा है।

उपरोक्त वंशावलियों का वर्णन प्रयाग के पण्डा राजा राम के वंशजों के पास सुरक्षित वहियों में प्राप्त है। उसमें यह कनोडिये ढूसर करके लेख बद्ध हैं।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय—१

जन्म व पितृ परम्परा

मध्यकालीन भारत के महान सेना-नायक, अकबर के एक मात्र प्रतिद्वन्दी, परमवीर हेमू का जन्म आधुनिक राजस्थान राज्य के अलवर क्षेत्र के राजगढ़ से तीन मील दूर "माछेरी" नाम के स्थान पर हुआ था। मुग़ल सम्राट अकबर के इतिहासकार अबुल फज़ल ने निम्नलिखित शब्दों में हेमू का परिचय दिया है :—

"संक्षेप में वह दुष्ट आकृति वाला, जो छोटे कद का और दंभपूर्ण विचारों का था, मेवत के एक नगर रिवाड़ी के क्षुद्र फेरीवालों में ऊँचे पद पर पहुंचाया गया। जहाँ तक उसकी जाति (नसब-नस्ल) का सम्बन्ध है, वह ढूसर जाति का था........।"[१]

अबुल फजल के आधार पर ज्ञात होता है कि पानीपत के द्वितीय युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् अकबर ने पीर मुहम्मद खाँ को मेवात की ओर भेजा जहाँ हेमू का खजाना जमा किया हुआ बताया जाता था। जनवरी १५५७ ई० में पीर मुहम्मद ने "हेमू के जन्मस्थान **देवली-सजरी** (या साचारी) तक अलवर की सरकार पर अधिकार कर लिया।"[२] इस स्थान को तत्कालीन इतिहासकारों ने "देवली-सजरी" अथवा केवल "साचारी" दोनों ही नाम से संबोधित किया है। "देवली" या "देवती"[३] आधुनिक अलवर जिले के दक्षिण में स्थित है। स्वयं अबुल फजल ने आइन-ए-अकबरी[४] में "देवती सजरी" नाम दिया है। अल बदाऊनी ने इस शब्द को 'देवली' नाम से संबोधित किया है।[५] इम्पीरियल गजेटियर में 'मकासी' शब्द का उल्लेख है, जिससे यह ज्ञात

१—अबुल-फ़ज़ल = अकबरनामा (बीवेरिज द्वारा अनुवादित)
जिल्द—१ : पृ० सं० ६१५—६१९।

२— " " जिल्द—२ : पृ० सं० ७१—७२

३—देखिए अलवर गज़ेटियर:—पृ० सं० १५८—इसके अनुसार अकबर कालीन भारत में माछेरी व देवती—अलवर सरकार (जिला) के प्रमुख नगर रहे होंगे।—पृ० सं० १६४।

४—अबुल-फ़जल : आइन-ए-अकबरी ब्लाचमैन द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद : पृ० सं० ४५१।

५—अल-बदाऊनी : मुन्तखाबा-उत्-तवारीख : जैरेट द्वारा अनुवाद : २-१९१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है कि "मकासी" और 'देवली', जहाँ अब झील है, अकबर के समय में प्रमुख नगर रहे होंगे। यह प्रदेश "मेवात" कहलाता था।[१]

"मेवात" दिल्ली के दक्षिण में स्थित वह भू-भाग था, जिसमें अधिकतर मेव और मेवाती बसे हुए थे। यह सब एक ओर मथुरा जिले तक, दूसरी ओर भरतपुर के कुछ भाग तक तथा पहले के अलवर राज्य तक फैला हुआ था। अब उसका विलय राजस्थान राज्य में हो गया है। इम्पीरियल गजेटियर द्वारा भी हेमू को मेवात का निवासी स्वीकार किया गया है।[२] इस क्षेत्र में १५ वीं तथा १६ वीं शताब्दी में बहुत से ढूसर परिवार निवास करते थे। अबुल फजल ने भी अकबर के सेना-नायक मौलाना पीर मुहम्मद द्वारा हेमू के पिता (पूरनदास) का इसी क्षेत्र में बंदी बनाया जाना लिखा है।[3] अकबर के समकालीन, व राधा वल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक, श्री हित हरिवंश-वृन्दावन निवासी के शिष्यों में भी श्री नवलदास और पूरनदास रिवाड़ी निवासियों, का वर्णन मिलता है। हित हरिवंश जी अपनी यात्रा करते हुए, चिरथावल गाँव में कुछ समय ठहरकर सम्वत् १५९० (१५३३ ई०) की फाल्गुन की एकादशी को वृन्दावन पहुंचे। वहाँ पहुंचकर—

"मंदिर सुंदर सरस बनायो। करि अविशेष प्रभुहि पधरायो॥
श्री राधाबल्लभ नाम सुकह्यो। वेद पुरान संहितन लह्यो॥
पंद्रह सै इक्यानवें सुहायौ। कातिग सुदि ते रस सुख छायो"॥[४]

वृन्दावन पहुंचने पर हित हरिवंश जी ने मदनटेर नामक स्थान पर विश्राम के लिये डेरा डाला। उनके स्थायी रूप से वृन्दावन वास करने का निश्चय करने के पश्चात् भक्ति और प्रेम के मार्ग से श्री जी की सेवा उपासना का सुयोग पाकर श्रद्धालु जनता एक साथ गोस्वामी हरिवंश जी द्वारा प्रवर्तित मार्ग पर चल पड़ी और दूर-दूर तक उनकी साधना-पद्धति का प्रचार हो गया। इसी समय आपने कई श्रद्धालु भक्तों को अपना शिष्य बनाया। इन शिष्यों में भैगाँव[५] के अधिपति नरवाहन तथा रिवाड़ी[६] के श्री नवल दास और पूरनदास का नाम उल्लेखनीय है।[७]

१—अबुल-फजल : अकबरनामा : पृ० सं० २६६ : आईन : पृ० सं० ३५९
२—इम्पीरियल गजेटियर : खंड-२ : प्रकाशित १९०९. देखिए अलवर गजेटियर : लन्दन से प्रकाशित १८७८—पृ० सं०. ७.
३—अबुल-फजल : अकबरनामा जिल्द-२. पृ० ७१-७२.
४—भगवत मुदित कृत—रसिक अनन्यमाला-लिपिकार डूंगरसी-लिपिकाल-१८१७-हस्तलिखित प्रति-याज्ञिक संग्रह-नागरीप्रचारिणी सभा काशी।
५—जिला मैनपुरी-उत्तर प्रदेश।
६—रिवाडी-जिला गुडगांव-पूर्वी पंजाब।
७—विजयेन्द्र स्नातक : राधा बल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य : पृ० सं०—१०८.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

MAP OF ULWAR STATE

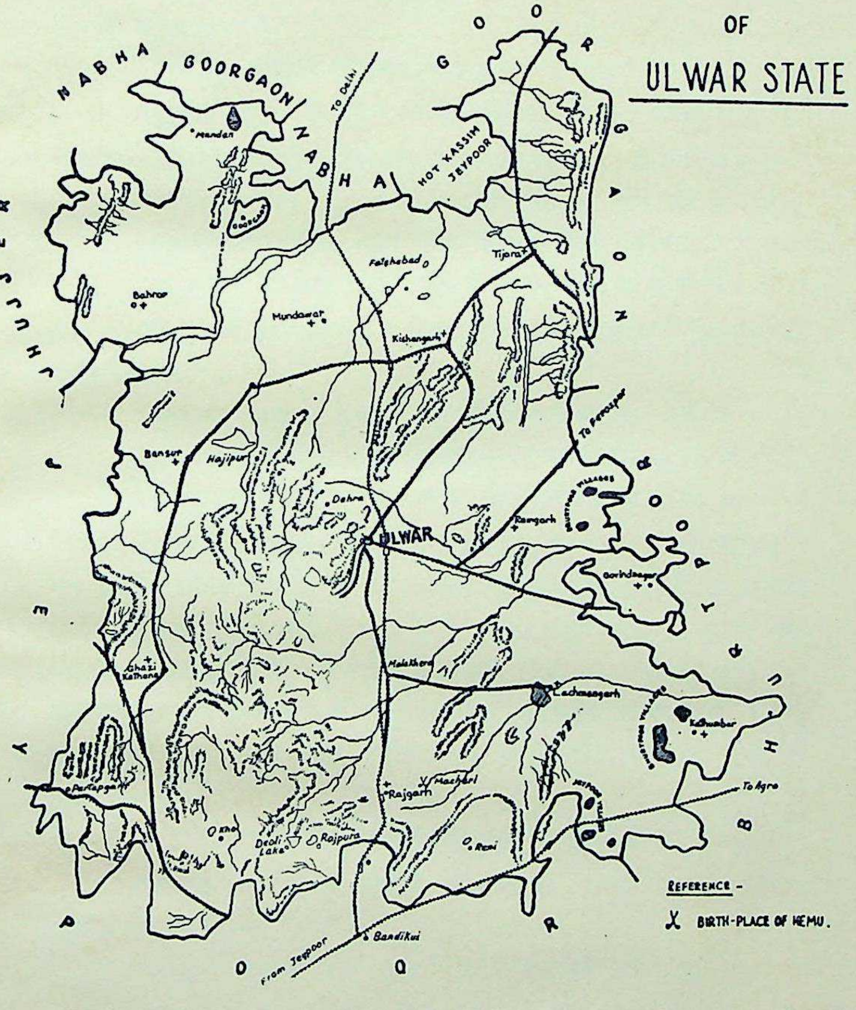

Adaptation from Gazetteer of Ulwar 1878

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परम-भक्त पूरनदास—उपरोक्त ग्रन्थ से संत पूरनदास व नवलदास के विषय में अनेक तथ्य ज्ञात होते हैं जिनसे परमवीर हेमू की जीवनी पर प्रकाश पड़ता है। नवलदास जी को वैरागी के रूप में वर्णित किया गया है और उन्हीं की कथा में हेमू का वर्णन है जिसमें उनको स्पष्टतः रिवाडी निवासी बताया गया है"……

"श्री हित हरिवंश के सिष्य नवल है जान।
दूसर कुल पावन कियौ, तिनको करौं बषान ॥ १ ॥

चौपाई—रैंवारी मधि घर है तिनको। कथा कीरतन मैं मन तिनकौ ॥ २ ॥
साधन की सेवा सुठि करैं। महानम् सबको मन हरैं ॥ ३ ॥
संत संगति वृन्दावन आए। श्री हरिवंश मिले सुख पाए ॥ ४ ॥
बहुत धौस लौं सेवा कीनी। गुरु नैं सिष्य परिछ्या लीनी ॥ ५ ॥

इसी प्रकार पूरनदास जी के विषय में परमानन्द चरित्र में निम्नलिखित वर्णन मिलता है।

"पूर्नदास विरक्त अनन्य। श्री हरिवंस धर्म संपन्न ॥ १८ ॥
प्रभु इच्छा करि ठट्ठे आए। पंडित गुनीनु दरसनपाये ॥ १९ ॥
इनके गुन सुनि नृपहि सुनाये। आदर सौं पूरन पधराये ॥ २० ॥

परमानंद रसिक की कथा से ज्ञात होता है, कि वह बड़े शूर क्षत्रिय के पुत्र थे और "साहि हियाँ के हैं चाकर"—अर्थात् हुमायूँ के तीन हजारी मनसब थे।[1] वह राजा होकर ठट्ठे में आए थे।[2] इन्होंने हुमायूँ शाह की बहुत सेवा की थी। इन्हें जहाँ भेजा गया वहाँ इन्होंने कार्य किया और शाह को बहुत द्रव्य पहुँचाया। इनको ज्ञान-भक्ति से बहुत प्रेम था। 'पूरनदास' के आगमन से उन्हें परम सुख मिला। वह उनसे प्रत्येक दिन श्री हरिवंश का नाम सुनने को कहते थे—

श्री हरिवंस चर्नं चित लसै। नव अभिलाषा मन मैं बसै ॥ ३८ ॥

परमसंत पूरनदास के ठट्ठे में आगमन के सम्बन्ध में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है :—

"पंद्रह सै बानवे भादौ सुदि। नवमीदिछालई भरे मुद ॥
… … …. … … …. … … …."
सदाचार भागवत सुहाए। आन धर्म मन तें बिसराए ॥

१—भगवत मुदित कृत : श्री हित चरित्र व रसिक अनन्य माल की द्वितीय हस्त लिखित प्रति में "साहि हिमाऊँ के हैं चाकर" उल्लिखित है। "परमानंद को परचय"— ॥ ४ ॥. पृ० ३४.

२—ठट्ठे—सिन्ध में—आधुनिक पश्चिमी पाकिस्तान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमानंद ने पूरनदास को ठट्ठे में बहुत दिनों तक रखा। परन्तु बारह वर्ष हो जाने के पश्चात् परमानंद ने स्वयं शाह को वहाँ से स्थानान्तरण के लिए लिखा.................................

"लिख्यौ साह को बूढ़े भये।
मेरे बदले और पठावहुँ। मोको बन एकांत बसावहु॥
विनिती लिषी साह कौ आई। और भेजए लये बुलाई॥"

तत्पश्चात् मनसब इत्यादि त्याग कर परमानँद बृन्दावन आकर बस गये। और सौ वर्ष तक की आयु भोगकर परमधाम को चले गए। भगवत मुदित के कथनानुसार परमानंद का—

"पूरन के परताप तें मिट्यो जगत संताप॥"

इस प्रकार तत्कालीन ग्रन्थ द्वारा पूरनदास की कृति पर प्रकाश पड़ता है। इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि अबुल फजल द्वारा वर्णित हेमू के पिता अत्यन्त धर्मात्मा व परम भक्त थे। इसीलिए उन्होंने ८० वर्ष की अवस्था में धर्म परिवर्त्तन अस्वीकार करके फाँसी को सहर्ष स्वीकार करके धर्म पर अपनी बलि दी। पूरनदास व नवलदास की राधावल्लभी सम्प्रदाय में पर्याप्त ख्याति थी। इसी कारण से हित हरिवंश जी ने एक को ठट्ठे व दूसरे को ओडछ—परमानंद व व्यास जी के पास, अपने मत का प्रचार करने के लिए भेजा था। उपरोक्त ग्रन्थ में उल्लिखित तिथियों से भी पूरनदास के हुमायूँ व अकबर के समकालीन होने का प्रमाण मिलता है।

हेमू की वंशावली—

हेम राय अथवा हेमू शाह, जो हेमू के नाम से प्रसिद्ध हैं. राय जयपाल[2] दास के पौत्र थे। उनके पिता का नाम राय पूरन मल, (पूरन दास) उर्फ पिया राव था। उनके छोटे भाई का नाम जुझार राव था। हेमू के जीवन काल में उनके भतीजे महिपाल ने सेना नायक के रूप में, और अफगान प्रति-द्वन्दियों के विरुद्ध लड़ाइयों के विजेता के रूप में, पर्याप्त ख्याति प्राप्त की थी। हेमू के भानजे रमया[3] का वर्णन भी पानीपत की दूसरी लड़ाई में बाम-पक्षीय सेना के नायक के रूप में, विशद रूप से उपलब्ध हैं। इन दोनों योद्धाओं के विषय में अन्य विवरणों का अभाव है। महिपाल, राय झोंडेराव के कुल में से थे, जिनके दो पुत्र थे नौहिंद राय तथा रूपराय। नौहिंद राय का पुत्र महिपाल था और रूपराय का पुत्र केवल-राम और नौनिध राय थे। महिपाल दूसर के पुत्र नाथमल

१—अकबरनामा—ब्लाचमैन : आइन-ए-अकबरी—पृ० ३५९.
२—धर्ममित्र : हेमू वीर : वंशावली—पृ० ३३।
३—अबुल-फजल : अकबरनामा : जिल्द—२ : पृष्ठ ५९।

हेमू की वंशावली

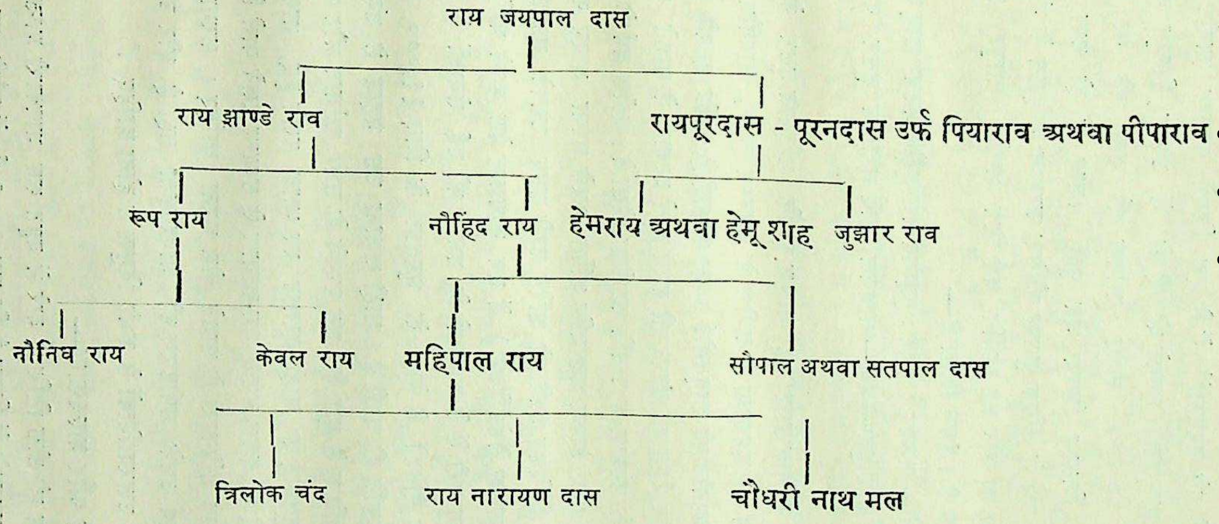

उपरोक्त वंशावली साधु धर्म मित्र द्वारा प्रकाशित "हेमूवीर"; तथा रिवाड़ी निवासी हेमू के वंशजों द्वारा प्रेषित सूचना पर आधारित है। इस संबंध में कुछ सूचना कानोडिये ढूसरों के तीर्थराज प्रयाग के पंडा राजा राम के वंशजों के पास सुरक्षित बहियों में भी उपलब्ध हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को अकबर द्वारा दिये गये फरमानों[1] में से एक जिनमें परगना कानौड की नारनौल सरकार में कानूनगोई उसको दी गई थी, में उसका विस्तृत वर्णन है। यह जागीर ११,००० रुपया वार्षिक की आय की थी और पटियाला राज्य (जिसका विलय अब पूर्वी पंजाब में हो गया है) में स्थित थी। ३०० वर्ष से अधिक पुराना मौलिक फरमान महिपाल के वंशजों ने सुरक्षित रखा हुआ था और वह स्वर्गीय धर्म मित्र भार्गव (जयपुर) द्वारा प्रकाशित कराया गया है। इसमें लिखा है—

अल्लाह—हो—अकबर : मुहर : मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर शाह गाज़ी फरमान आलीशान बाजीवुल—अर्ज—नाथमल वल्द महिपाल ढूसर दादाह शुद—

'आलीशान फरमान द्वारा यह मालूम हो कि महिपाल ढूसर के पुत्र नाथमल को, इस्लाम की छत्रछाया में खरीफ से आरम्भ होकर, नारनौल की सरकार में परगना कानौड की कानूनगोई प्रदान की गई है, ताकि इसको पानेवाला परोपकारी और रैयत की सरपरस्ती करने वाले दरबार के सामने अपने को पेश करके रैयत के कल्याण व उन्नति का लेखा-जोखा दे। प्रत्येक वर्ष के अन्त में उसको दरबार में स्वयं आकर श्रद्धांजलि अर्पित करके अपना आदर करना चाहिए। इस प्रकार विधिवत अपने को अर्पित करते समय उसको सम्राट के दफ्तर (कार्यालय अथवा सेक्रेटेरिअट) में सब कागजात पेश करने चाहिए। परगने की कुल मालगुजारी में से कानूनगो के रूप में की गई सेवाओं के लिए अथवा शाही सेना के सैनिकों के वेतन के भुगतान के लिए ११,००० रुपए वार्षिक व्यय की स्वीकृति दी जाती है। शाही खजाना उस महाल से संबंधित व्यय के पूर्ण उत्तरदायित्व से मुक्त है। उस परगने के सभी वर्तमान और भावी जागीरदारों को कानूनगोई के शाही फरमान का ध्यान रखते हुए, नागरिक अथवा माल सम्बन्धी या बचत अथवा जन-कल्याण से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी विषय को उपर्युक्त अधिकारी के सामने पेश करना चाहिए। फरमान के पाने वाले को हर वर्ष उसके नवीकरण की आवश्यकता नहीं है और उसको फरमान द्वारा प्राप्त उत्तरदायित्वों से कभी विमुख न होना चाहिए।'

हेमू की जन्म तिथि और बाल्यकाल—

हेमू के जन्म की ठीक तिथि के बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। अबुल फजल के अकबरनामे में लिखा है कि सन् १५५६ ई० में फाँसी पर चढ़ने के समय हेमू के पिता राय पूरनमल ८० वर्ष के थे।[2] इससे हेमू के जन्म की

१—धर्ममित्र : हेमू वीर : फरमान—पृ० ६ ।

२—अकबरनामा से सवानिह :
ब्लोचमेन : आइने-अकबरी : पृ० ३५९ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तिथि सन् १५०० ई० लगाई गई है, अर्थात् जब उनके पिता २४ वर्ष के रहे होंगे। इस तिथि के अनुसार हेमू की आयु उस समय ४५ वर्ष की रही होगी जबकि उन्होंने एक सेना-नायक, राजनीतिज्ञ और तत्पश्चात् अदिली के प्रधान मंत्री और अन्ततः विक्रमाजीत के रूप में व दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट के रूप में ख्याति प्राप्त की। सन् १५५६ ई० में पानीपत की दूसरी लड़ाई के समय हेमू की आयु ५६ वर्ष की रही होगी।

कुल रीति के अनुसार हेमू ने शिक्षा अपनी मातृ-भाषा हिन्दी व फारसी में प्राप्त की। हेमू के पिता धार्मिक व्यक्ति थे और अपना अधिकतर समय साधु-संतों के सत्संग में व्यतीत करते थे। ८० वर्ष की वृद्धावस्था होने पर भी जब कि उनको कत्ल किया जानेवाला था, उन्होंने अपने धर्म परिवर्तन से मृत्यु को अच्छा समझा।

हेमू शेरशाह की प्रचलित कथा

हेमू के प्रारम्भिक जीवन के विषय में प्रचलित कई किवदन्तियों के अनुसार यह संदेह किया गया है कि हेमू के पिता और शेरशाह में सम्भवतः उनके प्रारम्भिक जीवन-काल में घनिष्ठ सम्बंध रहे थे। यह कहा गया है कि जीवन के आरम्भ में शेरशाह के पिता की विमुखता के कारण उसकी माँ ने अपने दोनों पुत्रों के साथ हेमू के पिता राय पूरनमल के यहाँ माछेरी में शरण ली। राय पूरनमल उस समय एक सुप्रसिद्ध जागीरदार थे जो अपना अधिकतर समय संतों के साथ भजन कीर्तन में ही व्यतीत करते थे। ऐसी किवदन्तियों की पुष्टि में ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते हैं। शेरशाह और हेमू की आयु के अन्तर से और शेरशाह के आरम्भिक जीवन[१] से सम्बन्धित विवरण से भी, इस किवदन्ती की पुष्टि नहीं होती है। शेरशाह ने, जो फरीद के नाम से प्रसिद्ध था और १४८६ ई० में पैदा हुआ था, १५ वर्ष की आयु में (अर्थात् १५०१ ई० में) जौनपुर में कम से कम तीन वर्ष बिताए, और तत्पश्चात् २१ वर्ष तक जागीरदार रहा। इस बीच में उसने बहुत ऊँच-नीच देखी पर आरम्भ के आक्रमणों

१—कानूनगो : शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन। अध्याय १ पृ० ३।
"हस्सन सूर की पहली संतान फरीद अच्छे बादशाह फिरोज तुगलक द्वारा स्थापित इस पवित्र "विजय नगरी" हिसार फिरोजा में पैदा हुआ था। (मखजन...........अफ़ागना,...........२०४) उसके जन्म की ठीक तिथि किसी इतिहासकार ने नहीं दी है। अब्बास सरवानी (इलिएट-४-३०८) ने कहा है कि वह सुल्तान बहलोल, जिसकी मृत्यु १४८८ ई० में हुई थी, के जीवनकाल में पैदा हुआ था। संभवतः तिथि १४८६ ई० रही होगी— हिन्दुस्तान (हिन्दुस्तानी एकेडमी यू० पी० द्वारा प्रकाशित पत्रिका) जिल्द ३—पृष्ठ २००-२०५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के समय उसके आगरा और दिल्ली से उत्तर-पश्चिम में आगे जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। और इस समय हेमू का जन्म भी नहीं हुआ था। अतः उनमें घनिष्ठ संबंध होने की बहुत कम संभावना थी। शेरशाह हेमू से १५ वर्ष बड़ा था।

पर दूसरी ओर शेरशाह के माता-पिता का नारनौल से सम्बन्ध और हेमू के कुटुम्बियों का उसी स्थान से सम्बन्ध, जैसा कि महिपाल ढूसर (हेमू का भतीजा) के पुत्र चौधरी नाथमल को सरकार नारनौल के परगना कानौड की कानूनगोई के दिए जाने से प्रमाणित होता है। इस बात की कुछ संभावना की पुष्टि करता है कि हेमू के माता-पिता का शेरशाह की माता से अवश्य सम्पर्क था और उन्होंने उसको व उसके दो पुत्रों को शरण दी थी।

शेरशाह की जीवनी से यह स्पष्ट है कि वह "अपने पिता की विमुखता और अदयालुता और सौतेली मां की ताड़ना के बीच पला।" हस्सन[1] सबसे छोटी पत्नी को जो एक दासी थी और जिससे उसके दो पुत्र सुलेमान और अहमद हुए थे, अधिक चाहता था। "फरीद की माता उसके हृदयहीन पति द्वारा त्याग दी गई थी" अब्बास सरवानी के अनुसार।[2]

"बा-मादर-फ़रीद ओ निजाम इलाका-ए-मुहब्बत ओ इख़लास व मुवद्दत ना दाश्त।"

(फरीद व निजाम की माँ के साथ प्रेम व वास्तविक स्नेह का सम्बन्ध नहीं रखता था।)

स्वभावतः फरीद और उसके भाई की, और साथ ही उसकी माँ की भी, बिलकुल परवाह नहीं की गई। वे एक दूसरे के प्रति घनिष्ठ सम्बन्ध के बीच बड़े हुए। ऐसा भी कहा जाता है कि इब्राहीम का परिवार अन्त में नारनौल में बसा, जहाँ उसे ४० सवारों के खर्च के लिए जागीर के कई गाँव मिले। कुछ ही समय बाद इब्राहीम मर गया और हस्सन को अपने पिता की जागीर सौंप दी गई। हस्सन का परिवार पर्याप्त समय तक नारनौल में, जिसे अबुल फजल ने "इब्राहीम की जन्म भूमि" कहा है, रहा मालूम होता है। मखजन-ए-अफ़ागना की हस्त लिखित प्रति में (पृ० २७६ वी०) हस्सन के नाम के बाद उसके परिवार का निवास-स्थान बतलाने के लिए, "साकिन कस्बा-ए-नारनौल"[3] लिखा है।

रोहतास के निकट स्थित सहसराम और खवासपुर को जमाल खाँ का स्थानान्तरण होने पर हस्सन भी पूर्वी सूबों में चला गया। उसका परिवार भी

१—कानूनगो : शेरशाह : अ० १—पृ० २ :
२—कानूनगो : शेरशाह : अ० १— पृ० ४ : इलिट—पृ० ३१४ जिल्द—४।
३—कानूनगो : शेरशाह : अ० १—पृ०३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारनौल से सस्सारम आ गया।[1] लेकिन फरीद और उसकी माँ के प्रति उपेक्षा पूर्ण वर्ताव होता रहा। जागीर के बटवारे के समय फरीद की माँ को एक भाग भी न मिला। लगभग १५०१ ई० में फरीद जौनपुर को भाग गया। इन परिस्थतियों में यह असम्भव नहीं है कि फरीद की माँ ने हेमू के पिता से कुछ आश्रय पाया हो। क्योंकि राय पूरन दास का सरकार नारनौल के परगना कानौड से घना सम्बन्ध था।

हेमू की उत्पत्ति और उसका उज्ज्वल उत्थान

अल-बदाऊनी ने दिल्ली पर आक्रमण का वर्णन करते हुए हेमू को "बक्काल"[2] कहा है और उसकी सेना को प्राणघातक।

अबुल फजल और दूसरे समकालीन लेखकों ने भी उसकी सफलताओं का इसी प्रकार वर्णन किया है। उनके द्वारा उसका उत्थान आत्मघातक समझा गया और उसके ऊपर सब प्रकार के घृणास्पद उपनामों की बौछार की गयी है। अबुल फजल कहता है—

"हेमू जिसने कि भला बुरा कह कर, छल करके, झूठा दोषारोपण लगा कर,—क्योंकि शासकों को जन-साधारण का अध्ययन करना होता है— अतः उनको आनन्द देता है—और वह भी इस सीमा तक कि वैधानिक दोष भी उनकी तीव्र दृष्टि से ओझल हो जाते हैं - , और स्वाभाविक दुष्टता के कारण निम्न श्रेणी से उच्च पद को प्राप्त किया था। उस अत्याचारी राजा का प्रधान मंत्री हो गया, जो अपना सारा समय क्रीड़ा आनन्द और भोग विलास में व्यतीत करता था और कार्यों की उपेक्षा करता था।"[3]

इसके बाद उसने हेमू का वर्णन उसी पक्षपातमय और अन्यायपूर्ण ढंग से किया है, और उसको सबसे निम्न श्रेणी का कहा है।

'**हेमू दरप से कूचहा नमकए शोर फरोख्त**"- अर्थात् हेमू गली-गली घूम कर नमक बेचने के लिए फेरी लगाने वाला बना दिया गया। कितना असत्य तथा भ्रमात्मक वर्णन है, सच्चे इतिहास से कितना परे है। यह नीचे लिखी पंक्तियों से और स्पष्ट हो जायगा।

१—कानूनगो : शेरशाह : अ० १—पृ० ५

२—अलबदाऊनी : मुन्तखाब-उत्-तवारीख - पृ० ६ - जिल्द २ लोक द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित—कलकत्ता १८८४।

३—अबुल-फजल-अकबरनामा (बीवेरिज द्वारा अनुवादित) जिल्द—१ पृ० ६१५--६१९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेमू का वर्णन

"ईश्वर की शक्ति के चमत्कार खोजने वाले को लम्बा दृष्टिकोण लेना चाहिए और हेमू के वर्णन से शिक्षाप्रद चेतावनी ग्रहण करनी चाहिए। बाहरी रूप से उसकी न कोई पदवी (हस्ब) थी न कोई जाति (नसब) थी, न कोई आकृति (सूरत) थी और न उसमें श्रेष्ठ गुण (सैरात) थे। संयोगवश अनुपम परमात्मा ने किसी गुप्त कारण वश, जो कि चतुर व्यक्ति की दृष्टि से भी छिपा था, उसको उच्च स्थान पर पहुँचा दिया गया; या शायद उस युग के दुष्टों को नीचा दिखाने के लिए उनसे भी निकृष्ट एक और को परमात्मा ने भेज दिया। संक्षेप में वह दुष्ट-आकृति वाला, जो छोटे कद का और दंभपूर्ण विचारों का था, **मेवत के एक नगर रिवाड़ी [१] के क्षुद्र फेरी वालों [२] में ऊँचे पद पर पहुँचाया गया।** जहाँ तक उसकी जाति (नसब) का सम्बन्ध है, वह ढूसर जाति का था, जो भारत में फेरी वालों की निम्नतम श्रेणी है। गलियों के पीछे उसने हजारों मृत प्राय व्यक्तियों के साथ (बा-हजारान-बिनिमाकी) खार (निमक-ए-शोर) बेचा, जब कि अन्त में वह चतुरता के कारण सलीम, जिसका संक्षिप्त वर्णन पहले ही दिया जा चुका है, के अधीन एक सरकारी फेरीवाला हो गया।"

तत्कालीन चाटुकार इतिहासकार ने अपने आश्रयदाता मुगल सम्राट को प्रसन्न करने के लिए उसके प्रतिद्वन्दी की बुराई करने में अपनी दक्षता पूर्णतया प्रदर्शित कर दी है। सत्य का तो बिलकुल गला ही घोंट दिया है। इतिहासकार पाठकों को विश्वास दिलाना चाहता है कि ईश्वर ने ही हेमू को निकृष्ट रूप में, उत्पन्न किया। हेमू के साथ ही साथ समस्त ढूसर जाति को भी निम्न कोटि का बता दिया गया है।

एक दूसरे मुस्लिम लेखक फिरिश्ता ने अपने "भारत में मुस्लिम शक्ति के उत्थान का इतिहास" में हेमू के उत्थान का उल्लेख इन शब्दों में किया है।

"जैसे ही मुबारिज खाँ ने सूर-वंश की गद्दी प्राप्त कर ली थी, उसने आदिल शाह की उपाधि धारण कर ली। पर निम्न श्रेणी के लोग शुरू का "ा" हटाकर और शब्द के अन्त में "ई" जोड़ कर उसको "अदिली" कहकर पुकारने की आदत में थे, जिस नाम से वह वंशजों में प्रसिद्ध है। सदा

१—गुड़ गाँव जिले में और एक रेलवे-जंक्शन।

२—फुटकर माल बेचने वाले;

३—बाजारों का अधीक्षक या बाजार का पुलिस-अधीक्षक-अबुल-फजल अकबर-नामा'-जिल्द-१-पृ० ६१५-६१९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुख-प्राप्ति में रत रहने के कारण आदिली ने पढ़ने व लिखने की साधारण योग्यता प्राप्त करने पर भी ध्यान नहीं दिया । वह विद्वानों से घृणा करता था और अपनी भाँति के वे पढ़े लिखे लोगों की संगत में रहता था, जिनको उसने राज्य के उच्चतम पदों तक ऊँचा उठा दिया । इन्हीं में एक हेमू (एक भारतीय दुकानदार) को, जिसको उसके पूर्वाधिकारी सलीम शाह ने बाजार का अधीक्षक (सुपरिटेंडेट) बना दिया था, और उसे कार्यों का पूर्ण प्रशासन सौंप दिया था ।[१]

आपने समकालीन फारसी अभिलेखों (रिकार्डस्) से प्राप्त सूचना के आधार पर अंग्रेज इतिहासकारों ने भी उसको नीच कुल में उत्पन्न बताया है । "हेमू ने अपने हिन्दू धर्म की बाधाओं, नीच कुल और छोटा कद के होते हुए भी अपने सम्राट के विश्वास को एक योग्य सेनानायक और जनता का शासक बन करके उचित सिद्ध कर दिया ।"

मुस्लिम-बक्काल के रूप में

"बक्काल" शब्द का तात्पर्य कोई जाति अथवा सम्प्रदाय से नहीं है । स्टेनलेस के अंग्रेजी व फारसी कोष के अनुसार भारत में इसका अर्थ अनाज का व्यापारी बताया गया है; परन्तु तत्कालीन भारत यह केवल एक घृणा सूचक शब्द था जिसका प्रयोग लेखक उन व्यक्तियों के लिए करता था जिनकी वह निन्दा करना आवश्यक समझता था ।[3] अबुल फजल ने स्वयं अकबरनामे में एक मुस्लिम सेना नायक को इन शब्दों में "बक्काल" कहा है ।

"ईदी रीना और अब्दुल मकरी का पुत्र हुसेन मकरी ने काश्मीरी फेरी-वाले (बक्काल) ख्वाजा हाजी पर, जो मिर्जा के कार्यों का मैनेजर था, विजय प्राप्त की" ।[४]

एक मुस्लिम सेना नायक का 'बक्काल' के रूप में एक और उल्लेख भी है ।

"इस माह के दसवें दिन को सम्राट ने एक प्राचीन विराम-स्थल रोमनी नगर में, जो भोजपुर के आश्रितों में से एक था, डेरा डाला । यहाँ से उसने

१—ब्रिग्स : जॉन : फरिश्ता का भारत में मुस्लिम शक्ति के उत्थान का इतिहास-१६१२ ई० तक जिल्द २ - लन्दन - १८२९ ।

२—स्मिथ : विन्सेंट : महान मुगल अकबर पृ० ३४ ।

३—अंग्रेजी - फारसी कोष : पृ० सं० १९३—
baqqal : A green grocer, a vendor of provisions in general; (in India) a grain merchant, a Corn chandler.

४—अकबरनामा अ०३१—पृ० ४०५ - ४०६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(अकबर ने) कासिम अली खाँ 'बक्काल' को खान खानम के पास यह पूछने के आशय से भेजा कि वह राय दे कि आगे क्या किया जाय............ ।[1]

शेरशाह नीच कुल में उत्पन्नः—

मुगल व उनके दरबारी लेखक अपने उच्च वंश, जिसको वे तैमूर से सम्बद्ध बताते थे, के बारे में बढ़ा-चढ़ा हुआ मत रखते थे । तारीख-ए-दाऊदी के अनुसार हुमायू द्वारा शेरशाह तक का यह कह कर उपहास किया गया है—नीच-कुल में उत्पन्न (राजा होते हुए भी) उसमें एक साधारण सैनिक की गंध आती है .... । वह भी कहा गया कि शेरशाह का दादा केवल एक घोड़ों का व्यापारी था, और इसलिए पदवी में बहुत नीचा था । बाद में, जब शेरशाह बादशाह हो गया, यह दावा किया गया कि वह घूर के शहन शाहानी सामन्ती का वंशज था ।[3] फरिश्ता ने उनके लिए कहा कि वे अपने को घूर के सुल्तानों के वंशज जानते थे' (फारसी पाठ्य-पृ० २२०) । कानूनगो के मतानुसार यह सही नहीं है, और हस्सन का पिता इब्राहीम रोह का एक निम्न वर्गीय अफगान था और उसका घोर के सुल्तानों के खून से कोई सम्बन्ध न था ।

अबुल फ़जल के शब्दों में—

'इब्राहीम एक घोड़े का व्यापारी था, और उसकी व्यापारियों के समूह में कोई विशेषता न थी ।[4]

इसकी पुष्टि खुलासातू-ए-तवारीख द्वारा होती है ।

'इब्राहीम जदूद-ए-फरीद आईनी शेरशाह सन्दागरी-ए-अस्पान-गें कद' ।[5]

१—अल-बदाऊनी—पृ० १८२—जिल्द—२ लोव द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद । वही—पृ० २४९ पर 'कल्याण राय बक्काल' का भी उल्लेख है ।

२—अब्बास सरवानी द्वारा अपनी तारीख - ए - शेरशाही में दी गई बंशावली इस प्रकार है ।

मियां इब्राहीम
|
मियां हसन
|
(फरीद निजाम) (अली यूसुफ) (खुर्रम सादी खां) (सुलेमान अहमद)
१ पत्नी से — २ री पत्नी से — ३ री पत्नी से — ४ थी पत्नी से

३—बनर्जी 'हुमायूं बादशाह' जिल्द १ अ० १३—पृ० १९० पृष्ठांकित टीका—२

४—अकबरनामा—पृ० ३२६

५—खुलुसात-ए-तवारीख-फारसी पाठ-मो० जफर हसन द्वारा संपादित पृ० ३१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इब्राहीम के पुत्र हसन ने व्यापार नहीं किया और फौजी पेशा किया बहुत समय तक वह अकबर के दरबारी रासल के दादा रायमल की सेवा में रहा, और उसके बाद उसके स्वामी बदले ।[1]

सब उल्लेख इस विषय में सहमत हैं कि हेमू रिवाड़ी का निवासी था और ढूसर जाति का था जो उस समय दो प्रकार की थी—एक तो वह ज़ो वैश्य जाति के ढूसर वर्ग[2] से बनी थी और ढूसरी भार्गवों[3] की, जो रिवाड़ी में बड़ी संख्या में एकत्र हो गए थे । जाति और वर्ग के मध्यकालीन मत के अनुसार इन वर्गों अथवा जातियों में से कोई सा भी नीच या निम्न कोटी की नहीं कही जा सकती । मध्यवर्ती युग में इनका समान रूप से आदर किया जाता था और ये कथित उच्च जातियों में से थी । इसलिए हेमू के नीच कुल के होने के सम्बन्ध के घृणास्पद वर्णन राजनैतिक शत्रुता का फल है न कि उसमें कोई ऐतिहासिक सत्य है ।

१—अकबरनामा पृ० ३२७

२—१८९१ की जनगणना की रिपोर्ट ।

"इस विषय में जिलों में पूछ-ताछ की गई और परिणामों के अनुसार अंकों को पुनः वर्गीकृत किया गया । ढूसर ज़ो ब्राह्मण जाति के होने का दावा करते हैं एक अलग जाति ढूसर भार्गव के रूप में दिखाए गए हैं । उनमें सूबों के बहुत से विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित हैं । ढूसरी ओर ढूसर बनियों का एक वर्ग है जिसमें विधवा-विवाह की अनुमति है और जिसका भार्गव जाति से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

३—गुड़गाँव (पूर्वी पंजाब) का जिला गज़ेटियर—

"ढूसर ब्राह्मणों के वंशज होने का दावा करते हैं । वे अपने नाम की उत्पत्ति ढौसी से बताते हैं ज़ो नारनौल के पास चपटी-चोटी वाली पहाड़ है जहाँ उनके पूर्वज च्यवन (ऋषि) ने अपनी तपस्या की । प्रसिद्ध हेमू रिवाड़ी का एक ढूसर था ।"

डा० आशीरवादी लाल – दी मुगल एम्पायर समकालीन इतिहासकारों ने हेमू को बक्काल या वैश्य कहा है, वास्तव में ढूसर भार्गव था (गौड ब्राह्मणों की उप-जाति) पृ० सं० १२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय—२

अफगानों का उत्थान तथा हेमू

"जिस समय सुल्तान बहलोल दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, हिन्दुस्तान के विभिन्न सूबों का शासन कई छोटे राजकुमारों द्वारा किया जा रहा था; और प्रत्येक शहर में 'खुतबा' अलग-अलग व्यक्तियों के लिए पढ़ा जाता था।"[1] मखजन-ए-अफाग के लेखक द्वारा कही गई बहलोल के आरंभिक जीवन की कहानी के अनुसार बहलोल की शक्ति का आरंभ उसकी सरहिंद की गवर्नरी के समय हुआ जहाँ कि उसने संपूर्ण शक्ति का प्रयोग किया। वह सुल्तान शाह का, जो इस्लाम शाह के नाम से प्रसिद्ध था और जो मुबारक शाह के समय में सरहिंद की सरकार संभाले था, भतीजा था। उस समय जब कि चारों ओर अराजकता फैली हुई थी, बहलोल ने अपने को सिंहासन पर स्थापित किया और दिल्ली वासियों को केवल नाम के बादशाह सुल्तान मुहम्मद, जिसको इस्तीफा देना पड़ा, के स्थान पर अपने को बादशाह मान लेने के लिए राजी किया। हिस्सान खां के नाम से प्रसिद्ध हाज़ी शैदानी के ऊपर सुगम विजय ने अफगान साम्राज्य की स्थापना के लिए रास्ता साफ कर दिया। अफगान इतिहासकारों ने एकमत से भारत में अफगान शक्ति के आरंभ को सुल्तान बहलोल लोदी की नीति का फल बताया है।[2]

बहलोल लोदी की सफलता कुलीन अफगानों के साथ अपनी प्रभुता को बाट लेने की धारणा में निहित थी। उसने कहा था :

"कि हिन्दुस्तान पर प्रभुता उसकी होनी चाहिए जिसने एक राष्ट्र पर जनजातियों के साथ शासन किया हो; और क्योंकि वह स्वयं ही अपनी जातियों और वंशों की संख्या से हिन्दुस्तानी सम्राटों से ऊपर गिना जाता था और गरीबी और दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते हुए भी अफगानों का पूरा राष्ट्र, उसके सम्बन्धी और बन्धु-बान्धव थे; उसने उन्हें बुलाने की और उन्हें आर्थिक संकीर्णता की दशा से निकालने तथा शक्ति सम्पन्न और बलवान शत्रुओं से

१—नियामतुल्ला—मखजन-ए-अफागना : डार्न द्वारा अनुवाद—अफगानों का इतिहास : लेखक ने अपना लेख तारीख-ए-इब्राहीम शाही और तारीख-ए-निजामी पर आधारित किया है।

२—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं : पृ० ९१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रक्षा करने की इच्छा प्रकट की"।[१] इससे स्वभावतः भारत में अफगान जातियों का अभूतपूर्व आगमन हुआ। बहलोल ने "प्रत्येक राष्ट्र और जनजाति के मुखिया सामन्तों को (भारत) आने के लिए" फरमान निकाले।[२] अफगानों ने तुरन्त ही उसका प्रतिपादन किया और वे हिन्दुस्तान आने से बड़े प्रसन्न थे। उनमें से कुछ तो रोह साम्राज्य को लौट गए, परन्तु अधिकांश, जिन्होंने उसके आधीन नौकरी की, उत्तरी भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक बस गए। कुछ ही समय के भीतर देश अफगान योद्धाओं से भर गया, जो अपनी पत्नी व बच्चों के साथ यहाँ आकर बस गए। इस अन्तर्प्रवेश के प्रवाह का ऐसा समा बंधा कि "उन्होंने (अफगानों) हिन्दुस्तान में प्रति दिन, प्रति मास और प्रति वर्ष पहुँचना आरंभ किया और मन भर के जागीरें प्राप्त कीं।" इस नीति का परिणाम महान था—यही कि अफगान बहुत शीघ्र यहाँ के निवासी हो गए और हिन्द को अपनी मातृ-भूमि समझने लगे।

शेरशाह के पूर्वज—

यह बहलोल के सुखदायी शासन काल की बात है, जब कि शेरशाह के दादा, मियाँ इब्राहीम सूर, हिन्दुस्तान आए। अब्बास सरवानी के अनुसार, इब्राहीम, रोहड़ी के नाम से प्रसिद्ध शरधारी या तसरधारी नामक स्थान से आया जो कि सुलेमानी क्षेत्र का भाग है। यह लम्बाई में ६ या ७ क्रोह[3] है और पेशावर के पास कमालपुर[४] के किनारे बसा है। फरीद के पिता मियां हसन खां ने उसका साथ दिया। बहलोल के शासन काल में ही फरीद का जन्म १४८६ ई० में हुआ था।

१—नियामतउल्ला : दि मखजन-ए-अफ़ागना : अंग्रेजी अनुवाद डार्न द्वारा—पृ० ८०-८३।

२—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं : पृ० ९२।
बहलोल लोदी ने कहा:—कोई अफगान जो रोह देश से हिन्दुस्तान में मेरी नौकरी करने आता है, उसको मेरे पास लाओ। मैं उसको ऐसी जागीर दूंगा जो अनुपात में उसके रेगिस्तानी जमीनों से अधिक हो और जिससे उसे संतोष हो जाए: लेकिन यदि वह रिश्ते अथवा दोस्ती के नाते आप में से किसी की नौकरी में रहना चाहे तो आप उसको संतुष्ट करने का प्रबंध करें। क्योंकि यदि मैंने सुना कि कोई रोह से आया हुआ अफगान जीविका-साधन या नौकरी न मिलने के कारण लौट गया तो मैं उस सामन्त की जागीर ले लूंगा जिसने उसे रखने से मना किया हो।

३—क्रोह : (दो मील) (Karoha) : A road measure of two miles. फारसी अंग्रेजी कोष।

४—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं : पृ० ९६-पाद-टिप्पणी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरंभ में इब्राहीम एक शक्तिशाली अफगान प्रधान सामन्त महावत खां सूर, जिसकी पंजाब के परगने हरियाना और बाहकला में जागीरें थीं, का अधिकारी हो गया। कुछ समय बाद इब्राहीम ने मेहती खां से अपना संबंध तोड़ दिया और जमाल खाँ सारंग खाँ के पास चला गया जिसने उसके अधीन ४० घुड़सवार रख दिए और जागीर में परगना नारनौल दिया। इस प्रकार इब्राहीम और उसका पुत्र हिसार फिरोजा में बैजवाड़ा में बस गए। कुछ समय बाद हसन इब्राहीम से अलग हो गया और सुल्तान बहलोल के महान सामन्तों में से एक, उमर खां सरवानी की सेवा में लग गया।[१] हसन खां को एक जागीर शाहाबाद में दी गई[२] जो भावली कहलाती थी और सरहिन्द सरकार में थी। उमर खां से यह प्रार्थना भी की गई कि युवक फरीद को वह अपनी प्रजा बना ले : लेकिन बहुत छोटा होने के कारण उसे वह सम्मान देना मंजूर नहीं किया गया और भावली में केवल एक तालुका दे दिया गया।

इब्राहीम की मृत्यु के बाद, हसन ने उमर खां से प्रार्थना की कि नारनौल में उसके पिता की जागीर उसको प्रदान कर दी जाए। उसे वह मिल गई और जमाल खां उसको अपनी प्रजा बनाने के लिए भी राजी हो गया। यह उमर के कहने-सुनने का प्रभाव था कि जमाल ने उसे यह सम्मान दिया।

जमाल खां का स्थानान्तरण—

बहलोल के उत्तराधिकारी सुल्तान सिकंदर ने जौनपुर की विजय के बाद पूर्वी जिलों का शासन, १२ हजार घुड़सवारों की शक्ति सहित, जमाल खां के सुपुर्द कर दिया। जमाल का कृपापात्र होने के कारण हसन को पूर्व में उसके साथ जाने के लिए कहा गया और उसे वाराणसी के पास सहसराम, हाजीपुर और खवासपुर टांडा में ५०० घुड़सवारों के भरण-पोषण के लिए जागीर मिली। हसन के साथ-साथ उसका परिवार भी नए भूखण्ड में जाकर बस गया; परन्तु "सुलेमान की माँ के प्रति हसन का झुकाव होने के कारण और इससे फरीद की ओर उसके स्नेह और प्रेम को ठेस पहुँचने" के कारण उसके पारिवारिक कष्ट घटने के स्थान पर और बढ़ गए।[३] जागीर के बांटे जाने और फरीद की उपेक्षा

१—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूँ : पृ० ९६—"यह मालूम होता है कि बहलोल के दरबार का एक उच्च प्रधान, मियां हसन खां सरवानी, जिसे खान-ए-आजम उमर खां की उपाधि मिली थी, अपने सबसे बड़े पुत्र के जन्म के कुछ समय बाद ही सुल्तान द्वारा लाहौर का गवर्नर बना दिया गया था और उसे सरहिंद में जागीर दे दी गई थी।"

२—नियामतउल्ला ; दि मखजन-ए-अफ़ागना ; अंग्रेजी अनुवाद; डार्न; पृ० ८०-८३।

३—नियामतउल्ला : दि मखजन का अंग्रेजी अनुवाद : डार्न : पृ० ८०-८३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने पिता और पुत्र के बीच की खाई और गहरी कर दी, जिसका फल यह हुआ कि फरीद जौनपुर चला गया। वह वहाँ दो उद्देश्यों से गया था—अपनी शिक्षा पूर्ण करने के लिए और जमाल खां के संरक्षण में सेवा प्राप्त करने के लिए। फरीद के नए सेवाकार्य से हसन घबड़ाया और उसके प्रति जमाल खां की कृपा व प्रभाव बढ़ने के डर से उसने इस अवसर पर जमाल खां को पत्र लिखा। "इसमें उसने जमाल खां से फरीद को, जो उसके पास केवल असंतुष्ट होने के कारण चला गया था, मनाने की तथा अपनी शिक्षा के लिए वापस भेजने की प्रार्थना की।"[1] जमाल ने फरीद को बुलवाया और उसको उसके पिता की इच्छा से अवगत किया। "फरीद ने उसको मानने से दृढ़तापूर्वक मना कर दिया, यह कहते हुए कि उसकी साहित्य की ओर पहले ही रुचि हो चुकी है, और शिक्षा प्राप्ति के लिए सहसराम से जौनपुर कहीं आगे था और वहाँ इसके लिए अवसर भी अधिक थे।" इसके बाद फरीद ने बड़ी तत्परता के साथ शिक्षा की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया—काज़ी सेहबुद्दीन की टीका-टिप्पणियों के साथ काफिया देखना; और फारसी साहित्य गुलिस्तां, बूस्तां और सिकन्दरनामा पढ़ना; लेकिन उसने मुख्यतः साधारण इतिहास की शिक्षा की ओर, और विशेषतः प्राचीन शहजादों के इतिहास की ओर, अपने को लगाया"[2] जैसा कि शेरशाह की जीवनी के लेखक कानूनगो ने लिखा है—"फरीद सदैव प्राचीन बादशाहों के गुणों पर लिखी गई पुस्तकों को पढ़ना पसंद करता था। इतिहासकार फरीद की साहित्यिक सफलताओं की प्रशंसा करने में एकमत हैं—फरीद का सांसारिक मामलों का विस्तृत अध्ययन और अनुभव यह प्रकट करता है कि वह जौनपुर पर्याप्त समय तक रहा।" यह अवधि कम से कम १० वर्ष की—कदाचित् १५०१ ई० से १५११ ई० तक अर्थात् उसके २५ वें वर्ष तक—कही जाती है।[3]

पिता व पुत्र का राजीनामा--

फरीद को सहसराम वापस लाने के लिए राजी करने के प्रयास में असफल होकर, हसन स्वयं जौनपुर गया और अपनी जागीरदारी के पद से फरीद के पक्ष में त्यागपत्र देने के लिए सहमत हो गया। फरीद जागीर पर पूरा अधिकार दिए जाने की शर्त पर उसका भार संभालने के लिए तैयार हो गया। हसन भी ऐसा करने को तुरन्त राजी हो गया। फरीद सहसराम पहुँचा और बड़ी तत्परता से अपनी जागीर का शासन करने लगा। स्वयं हसन खां को जौनपुर में अपने स्वामी

१—नियामतउल्ला : दि मखजन : अंग्रेजी अनुवाद : डार्न पृ० ८०-८३।
२—नियामतउल्ला : दि मखजन : अंग्रेजी अनुवाद : डार्न : पृ० ८०-८३।
३—तुलना कीजिए : अब्बास सरवानी : पृ० ६०-६५ : इलियट : ४ : ३१२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सेवा में प्रस्तुत होने के लिए आदेश दिया गया। कुछ ही समय में फरीद ने जागीर के मामलों को सुव्यवस्थित कर दिया और सम्पूर्ण जागीर में पुनः शांति स्थापित कर दी। उसने २०० घुड़सवारों की सेना का एक दल तैयार किया और पड़ोसी जागीरदारों को अधिकार में कर लिया।

फरीद जागीर का प्रबंध १५१८ ई० या १५१९ ई० तक करता रहा अर्थात् उसने अपने पिता के परगनों पर ७ या ८ वर्ष तक सफलता पूर्वक राज्य किया। इसी के साथ में पूर्वी सूबों में दरिया खां लोहनी ने विद्रोह किया। फरीद का जागीर से हटना उसकी सौतेली मां (अर्थात् सुलेमान की मां) के छल के कारण हुआ। दोनों भाई सहसराम छोड़कर आजीविका की खोज में आगरे की ओर चले गए और १५१८ ई० में सुल्तान इब्राहीम के दरबार में नौकरी के लिए पहुँचे।

शेरशाह के जीवन-काल की प्रमुख घटनाओं का तिथिक्रम—

१५१९ ई०—अपने पिता का घर दोबारा छोड़ा।

१५२० ई०—फरीद के पिता, मियां हसन की मृत्यु।
दौलत खां ने शाही फरमान फरीद के नाम में प्राप्त किया।

१५२१ ई०—बिहार के गवर्नर दरिया खां लोदी के विद्रोह से उलझनें पैदा हो गईं।

१५२२ ई०—फरीद ने बहर खां के अधीन नौकरी कर ली और शेर खां की उपाधि प्राप्त की।

१५२६ ई०—शेर खां का सस्सारम[1] में आगमन, जब कि उसका स्वामी कन्नौज में मई १५२६ ई० में मुगलों की गतिविधि का निरीक्षण कर रहा था। शेरखां ने बहादुर खां नूहानी के अधीन नौकरी कर ली।

१५२७ ई०—सस्सारम में विरोधी दावेदारों ने शेरखां को हरवाया, जिसने दिसम्बर १५२६ ई० के बाद और जून १५२८ ई० तक जुनैद बारलस के मुवक्किल के रूप में बाबर की नौकरी की।

१५२८ ई०—चंदेरी पर चढ़ाई के समय बाबर का साथ दिया।

१५२८-२९ ई०—बाबर के पूर्वी आक्रमण की सफलता के फलस्वरूप शेरखाँ को अपनी जागीर फिर से मिल गई।

१५२९ ई०—बिहार में महमूद लोदी की निष्फल चढ़ाई और बाबर के हाथों उसकी पराजय के बाद शेरखाँ को जागीर अंतिम रूप से सौंप दी गई।

१—सस्सारम : सहसरम : बिहार का एक जिला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शेरशाह बिहार के नायब-सूबा के रूप में—

१५२९ ई०—बिहार में अराजकता। जलाल खाँ को पुनः सूबेदार बनाया। व दादू को संरक्षिका और उसने शेर खां को अपना नायब बना दिया।

१५३० ई०—चुनार पर कब्जा।

१५३३ ई०—जनवरी में शेर खां का हुमायूं के सम्मुख समर्पण करना।

शेरशाह का सर्वोच्चाधिकार प्राप्त करना—

१५३४ ई०—सूरजगढ़ की लड़ाई। बिहार के बिना मुकट (ताज) के बादशाह के रूप में।

१५३५ ई०—फत्‌ह मालिका का खजाना प्राप्त होना और उत्तरी-पूर्वी बिहार जीतना।

१५३६ ई०—गौर (पूर्वी बंगाल का एक नगर) के प्रवेशद्वार पर बंगाल के महमूद शाह के विरुद्ध लड़ाई।

१५३७ ई०—बंगाल पर दूसरा आक्रमण "—शेरशाह दूसरे कम सुरक्षित मार्ग से गया और ४०,००० घुड़सवारों, १,६०० हाथियों और ३०० किश्तियों के बेड़े तथा २ लाख व्यक्तियों के साथ गौर पर कब्जा कर लिया।[1]"

शेरशाह और मुगल—

१५३७ ई०—हुमायूं से मुठभेड़।

अक्तूबर १५३७ से मार्च १५३८ तक—चुनार को घेरना। बंगाल को लौटना और गौर पर अधिकार करना। महमूद शाह की पराजय।

१५३८ ई०—रोहताश गढ़ के किले पर कब्जा।

१५३८ ई०—हुमायूं का बंगाल की ओर कूच करना। गढ़ी में मुगलों की पराजय। शेरशाह का गौर से पीछे हटना। पुर्तगाली इतिहासकारों का कहना है कि "शेर खाँ ने गौर नगर को विध्वंश कर दिया और लूट लिया और ६ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं पर अधिकार किया।"[2]

दिसम्बर १५३८ ई०—मिर्जा हिन्दल का आगरा में विद्रोह। हुमायूं का बंगाल से कूच करना।

१—पाद-टिप्पणी : बंगाल में पुर्तगालियों का इतिहास—पृ० ३५-३८—देखिए दी बारोस् दा एशिया—दिसम्बर ६ भाग २—पृ० ५००।

२—कैम्पस : पुर्तगालियों का इतिहास—पृ० ४०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब कि १५३८-३९ की शरदऋतु में हुमायूं विश्राम करता रहा, शेरशाह कार्यशील था। उसने बनारस पर कब्जा किया, बहराइच छीना और एक ओर कन्नौज और संभल के बीच का और दूसरी ओर जौनपुर और बहराइच के बीच का सम्पूर्ण प्रदेश शेरशाह के हाथ में आ गया। उसने अफगानों को एक बार फिर एक झंडे के नीचे इकट्ठा किया, और सर्वसाधारण के सम्मुख यह घोषणा की कि वे भारत से मुगलों को निकाल बाहर करेंगे। दूसरी ओर हुमायूं की वापसी दुर्भाग्य से दुरूह हो गई और घटनाओं ने उसे घोर विपत्तियों में ग्रस्त कर लिया।

चौसा की लड़ाई

लड़ाई २६ जून, १५३९ को हुई, जब कि मुगल सैनिक शिविर में नींद की झपकी ले रहे थे। भोर होते ही अफगान सैनिक सहसा उन पर टूट पड़े। बहुत से मुगल भाग खड़े हुए। जब मुगल सम्राट ने अपनी फौजें इकट्ठी कीं, तो वह ३०० व्यक्तियों से अधिक नहीं जुटा पाया। लगभग ८,००० आदमी काम आए। उनमें से अधिक तो मारे गए, शेष गंगा में डूबकर मर गए। शेरशाह ने गंगा पार की और कन्नौज तक पहुँचा। हुमायूं एक भीरु की भाँति आगरा को वापस चला गया। असहाय और अबला मुगल औरतें अफगानों के हाथ पड़ीं। शेरशाह ने उनके साथ एक शूरवीर का सा बर्ताव किया जैसा कि अब्बास सरवनी द्वारा किये गए निम्नलिखित उल्लेख से प्रकट होता है।[1]

"जब कि सम्राट हुमायूं की रानी, और कुलीन स्त्रियों और बहुत सी औरतों के साथ, पर्दे के पीछे से आईं तो वह अपने घोड़े से उतर पड़ा और उनका हर प्रकार से आदर-सत्कार किया और उन्हें सांत्वना दी।"[2]

बंगाल और बिहार का बादशाह (१५३९-४०)—

शेरशाह ने अपनी विजयश्री को दृढ़ करने में कोई समय नहीं गंवाया। उसने अपने को बंगाल और जौनपुर का बादशाह घोषित कर दिया। इस विजय के पश्चात् वह विशाल प्रदेशों का वास्तविक शासक हो गया। अफगान भी सफलता की नई लहर से उत्तेजित होकर एक नए जोश से भर गए। उन्होंने अपनी विजयों को एक राष्ट्रीय विजय समझा—वह विजय जो कि उन्होंने विदेशी आक्रमणकारी मुगलों पर प्राप्त की थी। दिसम्बर १५३९ में शेरशाह औप-

---

१—**अब्बास** : हस्तलिखित प्रति—१६६-१६७ : इलियट : ४-३७५-३७६।

२—**डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूँ** : पृ० १३५ :

चौसा की हार के ऐसे कारण थे, जिनका स्पष्टतः विश्लेषण किया जा सकता है। यह मना नहीं किया जा सकता कि हार जीत का निर्णय करने में विश्वासघात का बहुत बड़ा हाथ था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चारिक रूप से भारत में बसे अफगानों का बादशाह घोषित कर दिया गया। सिक्के प्रचलित किए गए और उसके नाम पर 'खुतबा' पढ़ा गया। उसी समय 'खाँ' उपनाम की जगह "शाह" रखा गया। उसने शाह-आलम की अतिरिक्त उपाधि और ग्रहण कर ली। शेरगढ़ टकसाल में हिजरी ९४५ में गढ़े गए सिक्कों की हाल की खोज से यह पता चलता है कि 'शेरशाह' की उपाधि पहले भी थी सिक्के नं० १२५७ और १२७०-ए पर भी "शेरशाह-अल-सुल्तान" शब्द अंकित हैं। इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि शेरशाह ने बिहार के बादशाह की उपाधि तब ग्रहण की जब कि हुमायूँ बंगाल में अकेला घिरा हुआ था और हिंदल मिर्जा ने आगरा में विद्रोह किया था। वृत्तान्तों में भी इस बात का प्रमाण है कि शेरशाह ने "शाह" की उपाधि चौसा की लड़ाई से पूर्व ग्रहण की थी।[1]

शेरशाह का पश्चिम की ओर कूच—

बंगाल, बिहार और पश्चिम में कन्नौज तक के सम्पूर्ण प्रदेशों का स्वामित्व प्राप्त करके शेरशाह ने अपने पुत्र को कालपी और इटावा पर आक्रमण करने के लिए भेजा। ईसा खां को माण्डु और गुजरात की ओर भेजा गया। अफगानों में अभूतपूर्व उत्साह था और उनकी, पानीपत की हार (१५२६) का बदला लेने और हिन्द से मुगलों को निकाल बाहर करने की, बड़ी इच्छा थी। इसमें आश्चर्य नहीं कि ऐसे प्रशंसनीय प्रयास में उन्हें सेनानायकों में राजपूतों और हिन्दुओं से सहयोग और सक्रिय सहायता मिली।

आगरा में बेचैनी—

आगरा में वास्तविक रूप से अराजकता थी। चारों ओर उपद्रव शुरू हो गए। कामरान ने अपनी धोखे वाली चालें आरम्भ कर दीं और वह पंजाब चले जाने को उत्सुक था। इसी बीच शेरशाह स्वयं दोआब पर आक्रमण करने

१—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूँ : पृ० १३७ : इस प्रमाण को दृष्टि में रखते हुए डा० कानूनगो का कथन कि "अब्बास इस विषय में चुप है कि कब और कहाँ शेरशाह गद्दी पर बैठा" निराधार है। अब्बास की पुष्टि अहमद यादगार और अब्दुल्ला द्वारा होती है, जो कहते हैं कि चौसा के बाद ही शेरशाह अफगानों की अनुमति से गद्दी पर बैठा और राजसी आन-बान अपनाई।

शेरशाह के सिक्कों पर नागरी और फारसी में उसका नाम खुदा रहता था। उसके कई सिक्के ॐ और स्वास्तिक के चिन्ह वाले भी पाये गए हैं। आगरा टकसाल के शेरशाह के सिक्कों में चित पर, कलमां और टकसाल का नाम; पट-पर फारसी में बादशाह का नाम; व नीचे नागरी में स्त्री सीरसाह खुदा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए आ गया था। मुगल फौजें घबड़ाई हुई थीं आम भगदड़ मची थी और लड़ने की अरुचि प्रबल थी। जैसे तैसे मुगलों ने अपनी फौजें जमा की और कन्नौज के ३१ मील उत्तर-पश्चिम में भोजपुर-नौकाघाट पर आ पहुँचे। शेरशाह ने भी नदी की दूसरी ओर डेरा डाला। अंतिम निर्णय करने वाली लड़ाई को मुगलों के नदी पार करने तक स्थगित कर दिया गया, जो उन्होंने कन्नौज के समीप पहुँचकर लड़ी।

कन्नौज की लड़ाई (१७ मई सन् १५४० ई०)—

१७ मई १५४० ई०—को दोनों फौजें युद्ध के लिए तैयार थीं।

हुमायूं की बहन गुल-बदन के शब्दों में—

"इसके बाद कन्नौज में वह अद्भुत लड़ाई हुई, जिसमें १०,००० के मुकाबले में ४०,००० सशस्त्र व्यक्ति बिना बंदूक चलाये भाग खड़े हुए। चौसा की भाँति यहाँ भी नदी में डूबकर हुई मृत्यु असंख्य थी और वहाँ भी सम्राट को एक निम्न श्रेणी के व्यक्ति ने बचाया। बचे खुचे आदमी पुनः आगरा चले गये।" लेकिन हैदर कहता है "हमने, निराश और आशाहीन तथा हृदय-विदारक दशा में होते हुए भी, पीछे रुक कर समय नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया वरन लाहौर चले गए।"[१] मिर्जा हैदर के कथनानुसार दोनों फौजों की संख्या २,००,००० व्यक्तियों[२] की थी। हो सकता है इसमें अतिशयोक्ति हो, तब भी मुगलों के पास कम से कम ३५ से ४० हजार व्यक्ति, २१ भारी बंदूकें और ७०० कुंदेदार बंदूकें (जर्बजान) थीं। लेकिन इन सब तैयारियों के होते हुए भी मुगल परास्त हो गये।

"उनके दिल संघर्ष में नहीं थे; वे उत्साहहीन व विच्छिन्न थे और उनका पथ-प्रदर्शन ठीक नहीं हुआ था[३]"। डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार "हिन्दुओं ने कन्नौज की इस घटना की बिलकुल उपेक्षा की जान पड़ती है। सारे देश में असंख्य मुखिया और जमींदार बिखरे हुये थे, पर हम उनको किसी एक का पक्ष लेते नहीं पाते। जिस उपेक्षा से हिन्दुओं में से अधिकतर लोगों ने हुमायूं

१—गुल-बदन : हुमायूंनामा : बेवरिज का अनुवाद—पृष्ठ ३२-३३, भूमिका : जैसे चौसा में, वैसे ही कन्नौज में, हुमायूं लगभग नदी में डूब गया था। यहाँ वह गजनी के शमसुद्दीन मुहम्मद द्वारा बचाया गया था, जिसकी पत्नी, जीजी अनागो का उपनाम रखकर अकबर की नर्स हो गई थी।

२—मिर्जा हैदर लिखता है—'बैलों की जोड़ियों द्वारा खींची गई २१ गाड़ियाँ अरस्किन तारीख-ए-रसीदी के उसी गद्यांश का प्रयोग करते हुए कहता है—२१ भारी बंदूकें, जिनमें से हरएक बैलों की ६० जोड़ियों द्वारा खींची गई थी।"

३—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं : पृ० १४५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के भाग्य को ग्रसित होते देखा उससे इस बात की पुष्टि होती है कि मुगल अब भी विदेशी समझे जाते थे।"[1]

उक्त कथन केवल कुछ हद तक सही है और पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं होता है। राजपूत अवश्य पृष्ठभूमि में थे, परन्तु ऐसी घटनाएँ हिन्दुओं के मुखियाओं द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखी जा सकती थीं। मालवा में मराठावाडा मुखिया की कार्यवाहियों के फलस्वरूप शेरशाह के पुत्र की मृत्यु हुई, और राजस्थान में शेरशाह के शोषण को राजा मालदेव द्वारा रोक दिया गया। शक्ति का केन्द्र कुछ समय के लिए मेवाड़ और उदयपुर से बीकानेर और जैसलमेर को खिसक गया। इसके अलावा अफगान जत्थे नाम के अफगान जत्थे थे। उनमें अधिकतर हिंदू सैनिक और मुखिया थे, जैसा कि हिन्दुओं और अफगानों के बाद के सहयोग से प्रकट होता है। गौर से गक्खर तक की प्रत्येक लड़ाई में उनकी संख्या हजारों में दी है। क्या इस पर विश्वास किया जा सकता है कि भारत में अफगानों की संख्या लाखों में रही होगी ? दूसरी ओर, जैसी जत्थों की बनावट थी उससे प्रकट होता है, अफगान केवल निर्देशन संभाले हुए थे, वे जागीरदार थे; वे अच्छे सैनिक थे; और उनके, "विदेशी मुगलों को निकाल दो" के नारे से उन्हें हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त हो गया था। सब लेखक इससे सहमत हैं कि मुगलों को विदेशी माना जाता था। डा० ईश्वरी प्रसाद तक ने इसको माना है। स्वभावतः अफगानों ने, जो स्वयं बाहर से आये थे, अपने को यहीं का नागरिक समझा, और देश की रक्षा के कर्णधार होने का गर्व कर सके। इस प्रकार उनके लिए हिन्दुओं से सहयोग करना स्वाभाविक था और हर जगह हिंदुओं की जन-संख्या अधिक थी।

ऐसी दशा में इस कथन में अधिक तथ्य नहीं है कि "यह आश्चर्यजनक है कि राजपूतों ने ऐसे संकट के समय भी शक्ति के लिए कोई प्रयास नहीं किया।" शेरशाह के समय में राजपूतों के पर्याप्त शक्तिसम्पन्न होने और अकबर के समय में उनके शानदार प्रतिरोध का इतिहास इसको झूठा सिद्ध कर देता है। हिन्दू और राजपूत, अफगानों के साथ-साथ बड़ी तत्परता से लड़ रहे थे। खवास खां के अधीन वीर राजपूत थे। अलवर के हाजी खां और हेमू के भतीजे महिपाल को उनका पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त था। केवल किसी चोटी के नेता के न होने के कारण वे लोग पृष्ठभूमि में थे। यदि राणा सांगा का उत्तराधिकारी राणा भी उतना ही शक्तिशाली होता, और राणा प्रताप से पहले ऊँची श्रेणी का वीर मेवाड़ के सिंहासन पर होता, तो संकटमय स्थिति का पलड़ा उनके पक्ष में होता। इस कमी की पूर्ति हेमू से किसी हद तक हुई और उसने इस संकट का लाभ भी उठाया। राजपूत पर्याप्त रूप से उसके साथ थे।

१—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं : पृ० १५४-१५५।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शेरशाह-हिन्दुस्तान के बादशाह के रूप में—

अब्बास के अनुसार, शेरशाह ने बिलग्राम की विजय के बाद नदी पार की और कन्नौज पहुँचा। और वहाँ से "विर्माजीत गौड़ (एक राजपूत अधिकारी ब्रह्मादित्य गौड़) को बड़ी फौज के साथ पहिले से ही भेज दिया, लेकिन उसको आदेश दिया कि वह सम्राट हुमायूं से जान बूझकर लड़ाई मोल न ले, और उसने संभल की ओर दूसरी फौज भी भेज दी।"[1]

जुलाई १५४०ई०रबी—१—९४७—हुमायूं आगरा से बाहर निकाल दिया गया। वह मेवत गया और फिर लाहौर की ओर रवाना हो गया। बहुत से मुगल आगरा में मारे गये। हुमायूं रोहतक और हिसार होता हुआ सरहिंद पहुँचा। वहाँ से वह मछवाड़ा गया और फिर जलंधर पहुँचा। खवास खां और विर्माजीत गौड़ के अधीन अफगान और राजपूत जुलाई १५४० ई० तक लाहौर पहुँचे। हुमायूं ने लगभग जमादी, २ हिजरी ९४७ के अंत में (३ अक्तूबर-३१ अक्तूबर १५४० ई०) लाहौर छोड़ा,[2] जब कि अफगानों ने नदी पार कर ली थी। लाहौर में अपने तीन महीने ठहरने के समय में हुमायूं बिखरे हुए मुगलों को शेरशाह के दलों के विरुद्ध न जुटा सका। कामरान तक ने उसकी सहायता नहीं की। कामरान-शेरशाह के षड़यंत्रों की पुष्टि जौहर के इस कथन से होती है कि मुगलों से समझौता करने के लिए शेरशाह द्वारा भेजे गए खास दूत ने कामरान के लिए एक पत्र प्राप्त किया।[3]

शेरशाह द्वारा हुमायूँ का पीछा—

गुल-बदन ने हुमायूं के भागने का विशद वर्णन इन शब्दों में किया है—

"महामान्य बीही हज़-ताज़ के पास ख्वाज़ा गाज़ी के बाग में पधारे। प्रतिदिन शेरखां का समाचार आता था। और उन तीन महीनों में, जब कि सम्राट लाहौर में थे, दिन प्रतिदिन समाचार आता था, 'शेरखां चार मील आगे बढ़ा'—'छः मील'—यहां तक कि वह सरहिंद के पास आ गया था।

"इस समय महामान्य ने मिर्जा हैदर को काश्मीर ले लेने के लिए नियुक्त किया। इसी बीच खबर मिली कि शेरखां वहाँ था। एक आश्चर्यजनक व्याकुलता हुई; और सम्राट ने अगली सुबह को कूच करने का निश्चय किया....।"

"थकान भरी यात्रा के बाद वे आखिर बक्खर पहुँच गए..........."[4]

१—अब्बास : इलियट : ४-३८३ : कानूनगो के अनुसार, लड़ाई वास्तव में हरदोई जिले में बिलग्राम में हुई, जो इस समय, कन्नौज से २१ मील दूर है। परन्तु यह मत दूसरे इतिहासकारों द्वारा नहीं माना जाता।

२—अबुल फजल : अकबरनामा : ३५८-३५९।

३ – जौहर : स्टीवार्ट द्वारा अनुवाद पृ० २६।

४—गुल-बदन : हुमायूं नामा : बीवेरेज द्वारा अनुवाद पृ० १४०-१४७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाहौर से निष्क्रमण का मर्मस्पर्शी वर्णन भी निम्नलिखित शब्दों में उपलब्ध है, जिस समय कि शेरशाह के बियाह (ब्यास) पार कर लेने की सूचना मिली थी और लाहौर को किसी समय भी संकट था।

"यह पुनर्जीवन का सा दिन था—व्याकुलता चरम सीमा पर थी, और हम लोगों के लिए, उपमा की भाँति, उसका भी अनुभव कर सकना संभव नहीं था। यह कहा गया है कि उस दिन के निष्क्रमण में २ लाख आदमियों ने लाहौर छोड़ा। यातायात के सब साधनों का आवश्यकता से अधिक उपयोग किया गया।[१] शेरशाह ने मुगलों का पीछा तब तक किया जब तक कि वह हिन्द की सीमा के बाहर नहीं हो गए। कामरान तक को, जो अफगानों से समझौते की बातें कर रहा था, सिन्ध पारकर लेने तक हिन्द से बाहर निकाल दिया गया।[२] इस प्रकार मुगल हिंदुस्तान से निकाल बाहर किये गये।

शेरशाह अपनी शक्ति की चरम सीमा पर—

मुगलों को हिन्द से बाहर निकाल कर शेरशाह ने गक्खरों को अधिकार में किया और गक्खरों के मुखिया राय सारंग की जिन्दा ही खाल खिंचवा ली। उसकी पुत्री को खवासखाँ के सुपुर्द कर दिया गया। देश को व्यवस्थित करके और रोहतास-दुर्ग के निर्माण की आज्ञा देकर, शेरशाह आगरा और देहली को लौटा। ग्वालियर के किले[३] पर अधिकार कर लिया गया; और शेरशाह ने देश का शासन सुव्यवस्थित करना आरंभ कर दिया। देश को ४७ क्षेत्रों में बाँटा गया। वह अपनी अधिकतर चढ़ाइयों में सफल रहा—

१—गुल-बदन : हुमायूँ नामा : बीवेरेज का अनुवाद : भूमिका—पृ० ३२-३३

२—सुजान राय : खुलासत-उत-तवारीख; वर्णन के अनुसार कामरान को शेरशाह से काबुल के साथ-साथ लाहौर पाने की आशा थी। मोहम्मद हादी कुंवर खाँ द्वारा लिखित एक दूसरी फारसी पुस्तक तरखीरियात-उस सलॉतीन के अनुसार, कामरान ने यह कहा—

"यदि मित्रता के प्रतीक के रूप में मुझे पंजाब दे दिया जाय तो मैं ऐसे कार्य करूँ कि उससे (शेरशाह से) शत्रुता करने का किसी का साहस न हो।" इस प्रकार काजी अब्दुल्ला के द्वारा कामरान, शेरशाह से गुप्त रूप से समझौता कर रहा था। लेकिन समझौता असफल रहा। हुमायूँ की शांति-वार्ता का भाग्य भी ऐसा ही रहा, जिसे अफगानों के बादशाह ने लात मार दी। वह कामरान या हुमायूं किसी के लिए भी पंजाब छोड़ने को तैयार न था। उसका सीधा सा उत्तर था—"मैंने तुम्हारे लिए काबुल छोड़ दिया है। तुम्हें वहाँ जाना चाहिए।"

३—अब्बास के अनुसार, शुजात खाँ की सहायता से शेरशाह ने ग्वालियर की ओर कूच किया और ग्वालियर पर अधिकार कर लिया—(जुलाई १५४० ई०—अप्रैल १५४२ ई०)। ग्वालियर में मुगल सेनानायक अबुल कासिम बेग ने उसके सामने हथियार डाल दिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५४२ ई०—मालवा पर अधिकार। शुजातखाँ माण्डु का शासक बनाया गया। रणथंभौर की विजय।

१५४२-४३ ई०—मुल्तान में बलूचियों से लड़ने के लिए हैवत भेजा गया।

१५४३ ई०—राईसीन पर कब्जा—राजा प्रताप सिंह के प्रतिनिधि पूरन मल की हार।

१५४६ ई०—जोधपुर के राजकुमार—मालदेव, अजमेर के महाराजा, नागौर और कई अन्य देशों के विरुद्ध युद्ध।

नवंबर १५४४ ई०—**कालिंजर का घेरा**— राजा कीरत सिंह ने वीरतापूर्वक सामना किया। शेरशाह ने किले तक पहुँचने के लिए ढके हुए मार्ग बनाये और उनकी ओर सुरंगें बिछवाई। इस ऐतिहासिक घेरे की कार्यवाहियों में, १०वां मुहर्रम९५२, या ५ मार्च १५४५[१] ई० को, "शेरशाह आग की लपटों में, जो कि दलितों की आहरूपी धुएं के साथ-साथ उठी थीं, झुलस गया।"[२] यद्यपि इस वीर अफगान की जान किले को अधिकार में करते हुए चली गई, किला अफगानों के ही कब्जे में आया। इस प्रकार ५ वर्ष २ मास और १३ दिन के शासन के वाद शेरशाह की जीवन-लीला समाप्त हो गई।[३]

इस्लाम शाह का गद्दी पर बैठना—

अचानक मृत्यु हो जाने के कारण शेरशाह अपनी इच्छा के उत्तराधिकारी का नामांकन न कर सका। न तो उसका बड़ा पुत्र आदिल खाँ, और न उसका छोटा पुत्र जलाल, उसके साथ था। जलाल निकट होने के कारण उसके शिविर में तीन दिन में पहुंच गया, और उसने अपने दृढ़ व्यक्तित्व के प्रभाव से अपने को अफगान सम्राट घोषित कर दिया। उसने शाह की उपाधि धारण की और इस्लाम शाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शेरशाह की अपने पुत्रों में से किसी के बारे में भी उच्च धारणा नहीं थी; "एक विलासी, दुराचारी, सुख और आराम का शौकीन था, तो दूसरा हठी और दूसरों पर दोषारोपण करने वाले स्वभाव का था।"[४] एक लेखक के अनुसार इस्लाम शाह "दुष्टता में अपने पिता से भी आगे था" और "अत्याचारी, शरारत करा देने वाला था।"[५] जब कि शेरशाह ने अपने बन्धु-बान्धव अफगान प्रधानों और वीरों की सहायता

१—डा० आर० पी० त्रिपाठी के मतानुसार २२ मई १५४५ : मुगल साम्राज्य का उत्थान व पतन—पृ० १७०।

२—अबुल फजल : अकबरनामा : जिल्द १ पृ०—३५८-३५९।

३—अबुल फजल : आईन-ए-अकबरी—जैरेट—२-पृ० १५९-१६०।

४—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं : पृ० १८१।

५— अबुल फजल : अकबरनामा : १ : पृ०—३५८-३५९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और इच्छापूर्वक सहयोग से शासन किया—इस्लाम शाह अफगान सामन्तशाही की जड़ें उखाड़ने और अपनी तानाशाही को बढ़ाने के कार्य में रत था। उसके रिश्तेदारों और सामन्तों में से जो उसके द्वारा मारे गये, देश से निकाले गये या कैद कर लिये गये, उनमें से कुछ के नाम यह थे "आदिल खां और छोटा भाई जलाल खां, कुतब खां सूर, बिर्माजीद खां सूर और कमाल खां सूर, जैन खां नियाज़ी, सईद खां नियाज़ी और शम्स खां नियाज़ी, शहबाज खां नूहानी बर्माजीद खां गौड़, दाउद खां, खवास खां, ईसा खां नियाज़ी और शुजात खां……."। इस्लाम शाह ने अपनी सावधानी और कठोरता द्वारा शासन की कुशलता को बनाये रखा। और बदाऊनी द्वारा कहा गया है कि उसके साम्राज्य के दूर से दूर गांवों में भी हर शुक्रवार को दरबार लगता था जिसमें सिंहासन पर राजा का एक पद-त्राण, राजा के प्रतिनिधि के रूप में रखा जाता था और शाही कानून लोगों को पढ़कर सुनाए जाते थे।[१] व [२]

इस्लाम शाह का सुधार-संबंधी उत्साह—

इस्लाम शाह ने अपने पिता के बहुत से नियम और संस्थाओं को बनाये रखा, जैसे—जासूस पद्धति, सड़कों और सरायों का विस्तार; एक कुशल सेना का पोषण और सीमा पर और भीतरी भाग में दृढ़ किलों का निर्माण—उदाहरणार्थ—मनकोट और सलीमगढ़। शेरशाह की सरायों के बीच में हर आधे कोस पर उसने एक और सराय बनवाई। हर सराय पर भिक्षा बांटी जाती थी और यात्रियों को विभिन्न सुविधायें दी जाती थीं। हिन्दू और मुसलमानों के साथ एक सा वर्ताव होता था। उसने सेना में कड़ा अनुशासन रखा। उसने सैनिक अश्वों के लिए दाग पद्धति चालू रखी, मुखियों के युद्ध के हाथी कब्जे में किये गये और लगान की वसूली सीधी लागू कर दी। सेना ५०,२००, और ५०० प्रत्येक की टुकड़ियों में बटी थी। "**५० की प्रत्येक टुकड़ी के साथ एक फारसी लेखक (कुछ वृतान्तों में तुर्की लेखक) और एक हिन्दी लेखक संबद्ध था**. सेनाओं के निर्वाह के लिए जमीनें प्रदान की जाती थीं। ५०००, १०००० और २०००० व्यक्तियों की फौजों के लिए एक अफगान सरदार, एक अफगान मुन्सिफ, एक हिन्दू मुन्सिफ और दो ख्वाजा सराह नियुक्त थे। अफगान वीरों की पदोन्नति करके उच्च पद पर नियुक्त किया जाता था। जासूसी-पद्धति को कुशलता से संगठित किया गया। शेरशाह एक दृढ़ अनुशासनशील व्यक्ति था और आज्ञा का पालन कराके रहता था।"

१—बनर्जी : हुमायुं बादशाह : अध्याय १४-पृ० २२०।

२—अल बदाऊनी : जिल्द १—पृ०—४९६-७। मुन्तखाब-उत-तवारीख रैंकिंग तथा लोव।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अम्बाला की लड़ाई (१५४७)—

आदिल खाँ और खवास खां द्वारा आयोजित विद्रोह आरम्भ होने से पूर्व ही दबा दिया गया। लेकिन ऐसे षंड़यंत्र की खोज से इस्लाम शाह का पहले से ही कड़ा और संदेहशील स्वभाव, और कड़ा हो गया। उसने चुनार के खजाने को कब्जे में करके और अपने प्रतिद्वंदियों—अपने भाई के मित्रों—का नाश करके, अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने पर ध्यान देना आरंभ किया। कुतब खां सूर, जैन खां नियाज़ी और दूसरे सामन्तों को जेल में ठूँस दिया गया। आज़िम हुमायूं और खवास खां द्वारा किये गये एक दूसरे विद्रोह को इस्लाम शाह ने स्वयं मैदान में आकर कड़े हाथों से दबा दिया। आज़िम हुमायूं और खवास खां अम्बाला के रणक्षेत्र से भाग गये और इस्लाम शाह ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। उसने 'दीनपनाह' कहलाने वाली दिल्ली की सीमा पर एक मजबूत किला बनवाया और उसका नाम सलीमगढ़ रखा। पंजाब पर अधिकार पूर्ण करके और दिल्ली को एक गढ़ बनाकर, इस्लाम शाह ग्वालिअर लौट गया, जो उसने एक सुरक्षित स्थान समझा था।

गक्खर प्रदेश पर विजय (१५४८-१५५०)—

आने वाले वर्षों में पंजाब और गक्खर क्षेत्र में संकट फिर से उत्पन्न हो गया। आजिम हुमायूं ने विद्रोह किया, लेकिन जब परास्त हो गया तो अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर रणक्षेत्र से भाग गया। गक्खर के मुखिया सुल्तान आदम के विरुद्ध विपत्ति २ वर्षों तक चलती रही, जब कि उसने शान्ति की प्रार्थना की और आजिम हुमायुं को निकाल बाहर करने के लिए सहमत हो गया। अफगान सेनाध्यक्ष शाह मुहम्मद फरमुल्ली को मनाया गया, और इस्लाम शाह फिर से आराम करने लगा। ग्वालियर (पंजाब में गविलगढ़) में उसने वेतन आदि के हिसाब को सोने के रूप में देकर तय करने का वादा किया, परंतु उसने वायदे को निभाया नहीं।

इस्लाम शाह की हिन्दू प्रजा

तारीख ए—दाउदी[1] के लेखक के अनुसार शिवालिक प्रदेश के राजा और ग्वालियर (पंजाब में पहाड़ी राज्य) का राजा परसराम उसके विश्वासी प्रजाजन हो गए और वह उसका आदर करता था। इस्लाम शाह ग्वालियर के लोगों से प्रसन्न नहीं था क्योंकि वे देखने में अच्छे नहीं थे। उसके द्वारा ये पंक्तियाँ व्यंगात्मक रूप में बनाई गई कही जाती हैं—

वाह परसराम नादानाम चमन सताम वुनाम
चू विनामाश ऊ अज खुश राम रास वुनाम
चिगुनाह वस्फ - ए - मियाँ - ए - ग्वालियर वुनाम
बशाराह रस्त नियाद अगर हजार वुनाम।

१—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूँ : पृ० १९० पादटिप्पणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

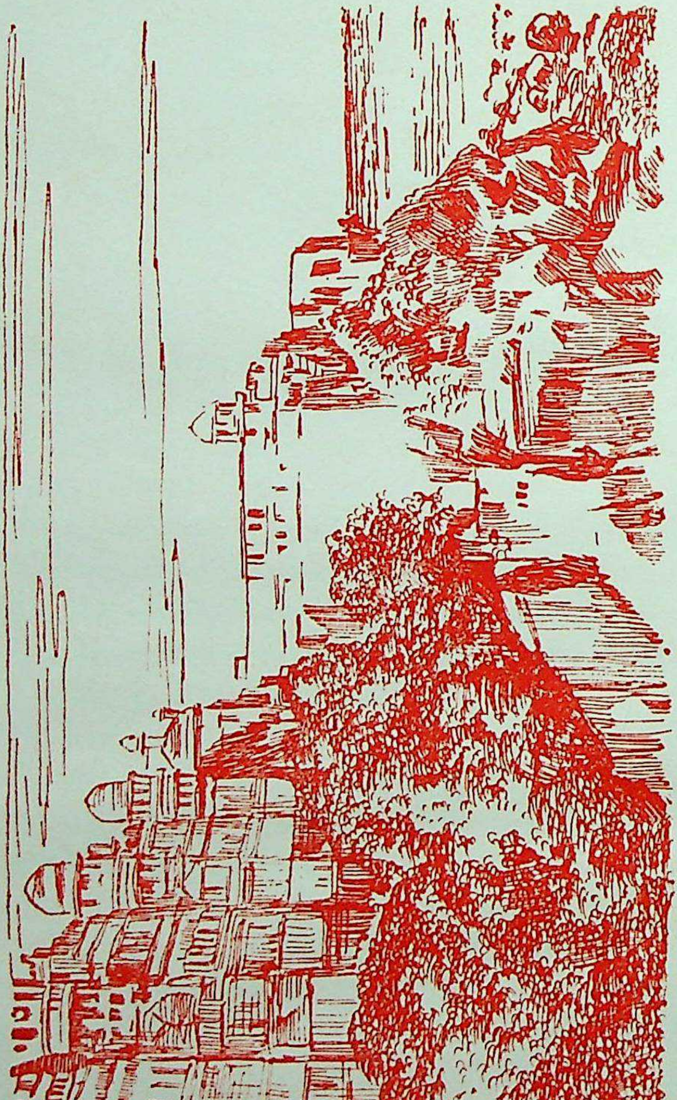

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"मुझे नहीं पता मैं परसराम को कैसे सलाम करूँ।
जब मैं उसका चेहरा देखता हूँ, तो "राम-राम" कहता हूँ।
मैं गाकर ग्वालियर की प्रशंसा कैसे करूँ ?
मैं ऐसा नहीं कर सकता, चाहे हजार प्रकार से यत्न करूँ ?"

इस्लाम शाह और हेमू

हेमू को मान्यता सर्वप्रथम इस्लाम शाह के शासन-काल में मिली। अपनी व्यापारिक चतुरता और असाधारण प्रशासकीय योग्यता के कारण वह शाही रसद-संग्रहकर्त्ता नियुक्त हो गया[1] और अन्ततः वह बाजार का अधीक्षक (सुपरिन्टेन्डेन्ट) हो गया।[2] हेमू ने, जिसमें व्यापारिक प्रवीणता थी और जिसे संभवतः व्यापार क्षेत्र का अनुभव था, अपना कार्य इतनी अच्छी तरह किया कि इस्लाम शाह उससे बहुत प्रभावित हुआ। हेमू का मुबारिज़ खाँ और दूसरे अफगान सामन्तों से परिचय इसी समय हुआ होगा, जिसके कारण बाद में उसकी पदोन्नति हुई।

अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षों में इस्लाम शाह को सतलज की ओर और उसके आगे कूच करना पड़ा और तब कामरान से मुठभेड़ हुई। कहा जाता है कि इस्लाम शाह ने कामरान के प्रति उदासीनता से बर्ताव किया, यद्यपि वह उसके शत्रु हुमायूं के शिविर से भागा हुआ था। इसके फलस्वरूप वह पहले कहलूर के राजा के पास, और बाद में जम्मू को, भागने पर विवश हो गया। जब वह गक्खर प्रदेश में पहुंचा, तो उसके प्रधान ने उसको बन्दी बनाकर मुगल बादशाह, हमायूं के सुपुर्द कर दिया। तत्पश्चात् इस्लाम शाह बीमार पड़ गया और ग्वालियर चला आया। अपने विपक्षी कुलीनों का नाश करने की योजनाओं में रत रहते हुए, उसने २२वीं जिल-कदा हिजरी ९६० (३० अक्तूबर १५५३ ई०) को अपने जीवन की अन्तिम श्वाँस ली।

१—डा० आशीरवादि लाल के अनुसार—हेमू की प्रथम नियुक्ति बाजार के तौल-बांट के निरीक्षक के रूप में हुई। इस विषय में बहुत मतभेद है।

२—बाजार का अधीक्षक (सुपरिटेंडेंट) :

तुलना कीजिये : अधीक्षक के साथ दो अफसरों की नियुक्ति। अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल के समय के बाजार के दो अधिकारी थे—दीवानए-रियासत और शाहना-ए-मण्डी। बाजार का शाहना' याकूब जहां किसी को व्यापारिक कानूनों का उल्लंघन करते पाता था, वहीं अपना सारा जोर लगा देता था। व्यापारिक विधान की सफलता प्रशंसनीय थी। बराइन ने इसके चार कारण बताये हैं—(१) बाजार के नियमों को कड़ाई से लागू करना (२) करों की जोरदार वसूली (३) लोगों में धातु निर्मित सिक्कों का अभाव, और (४) अधिकारी की निष्पक्षता और उत्साह, जो अपने कर्तव्यों का पालन ईमानदारी से करता था। (डा० ईश्वरी प्रसाद : मध्यकालीन भारत : पृ० २१५)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ३

हेमू का उत्थान

अबुल फजल[1] के शब्दों में, "वह (हेमू) अपनी दक्षता के कारण सलीम खां (इस्लाम शाह) के अधीन एक सरकारी फ़ेरीवाला[2] हो गया।" उसको बाजारों की निगरानी सौंपी गई थी, अर्थात् बाजार के "पुलिस सुपरिन्टेंडेंट" के रूप में कार्य करने के लिए आदेश दिए गये थे। समकालीन अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं है, कि उसका मुख्यावास कहाँ था। इस्लाम शाह ग्वालियर के किले में आराम कर रहा था। हेमू गुड़गाँव जिले के एक स्थान रिवाड़ी, जो अब एक रेलवे जंक्शन है, का निवासी था। उनके पद को ग्रहण करने की ठीक तिथि का भी उल्लेख नहीं है। यह सम्भव है कि इस्लाम शाह के ग्वालियर चले जाने के कारण, दिल्ली में एक ऐसे अधिकारी को नियुक्त करना आवश्यक हो गया हो। रिवाड़ी, दिल्ली के बिलकुल समीप है और हेमू दिल्ली के बाजार, जो उत्तरी भारत का मुख्य अनाज का बाजार रहा होगा (जैसा कि वह आज भी है), के मामलों को नियंत्रित करके अपने स्वामी के लिए एक योग्य सहायक सिद्ध हुआ होगा। अकबरनामे का लेखक इन शब्दों में हेमू की फिर से मिली-जुली प्रशंसा करता है।

"चालाकी में निपुण होने के कारण, उसने बुरा भला कहने और व्यापार की सामर्थ्य के द्वारा अपने को धीरे-धीरे सलीम खाँ के सामने योग्य जता दिया। वह हमेशा लोगों को मुसीबत में फंसा देता था। दिखावटी रूप में वह अपने स्वामी से निष्ठापूर्ण व्यवहार कर रहा था, पर वास्तव में वह अपने ही उद्देश्यों की पूर्ति की टोह में था, और अपने घर को दलितों के सामान से सजा रहा था.... ....[3]।"

अबुल फजल उसके प्रति घृणा और उपहास प्रदर्शित करता है, क्योंकि अपने ज़ीवन काल में उसने बाद में एक बार अकबर की फौजों से टक्कर लेने क़ी "धृष्टता" की थी। उसने अपनी "चालाकी की उत्कृष्ट कृतियों" द्वारा अपने स्वामी

१—अबुल फजल : अकबरनामा : जिल्द १—पृ० ६१५-६१६।

२—फुटकर चीजों का विक्रेता, एक फेरीवाला (Huckster); एक नीच और चालाक आदमी।

३—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं—पृ० १९४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सद्भावना और बिश्वास प्राप्त कर लिया था, और विक्रमाजीत की उपाधि धारण कर ली थी। लेकिन अबुल फजल भी उसकी व्यापारिक सामर्थ्य की प्रशंसा करता है और लिखता है कि वह साहस और क्षमता के लिए प्रसिद्ध हो गया और उसने अपने पराक्रम से महान कार्य किए। "इस तथ्य ने, कि हिन्दू-नेता (हेमू) में सैनिक और प्रशासकीय प्रतिभावान व्यक्तित्व पर्याप्त मात्रा में थे, कुछ भी महत्व नहीं रखा; और असंतोष शीघ्र ही खुले राजद्रोह के रूप में प्रकट होने लगा।" इस पर भी अदली ने, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, धीरे-धीरे हेमू के पक्ष में सब कुछ त्याग दिया, और हेमू को, स्वामी के लिए और अपने लिए अब कुछ करने की बिलकुल आवश्यकता न थी। अदली चुनार के किले में अपने चैन और आराम के जीवन से संतुष्ट था और हेमू जानता था कि पश्चिम में उसको अपना भाग्य निर्माण स्वयं करना है। वह धीरे-धीरे अदली और इस्लाम शाह के चुनार और ग्वालियर के सब खजानों का मालिक हो गया, और लड़ाइयों की व्यवस्था करने के लिए उसने बहुत धन रिवाड़ी और दिल्ली को भेज दिया। उसने इसको गुप्त नहीं रखा, वरन् खुल्लमखुल्ला सम्पन्न किया और न ही किसी ने इसके विषय में कोई प्रश्न उठाया, इसलिए अबुल फजल का निम्नलिखित आरोप असंगत है :—

"दूर हटो! दूर हटो!! वह अपने स्वामी के विनाश की तैयारी कर रहा था। और अपने पांव पर कुल्हाड़ी मार रहा था। यहीं पर (ऐसे ही अवसरों पर) संसार के महापुरुषों ने अक्सर एक बड़ी त्रुटि की, क्योंकि ये अधिकतर कार्यरत रहने वाले व्यक्ति, आदमियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने की इच्छावश, दुष्ट किस्से गढ़ने वालों को स्थान दे देते हैं या तो उनके विषय में गुप्त बातें जानने के लिए, या दुष्कर्म करने वालों को दण्ड देने के लिए। यद्यपि वे अपने मन में यह निश्चय कर लेते हैं कि वे सूचना का प्रयोग, अच्छे और स्वामीभक्त व्यक्तियों की प्रतिष्ठा और आदर पर दोष लगाने के लिए नहीं करेगें, फिर भी, बाहर से अच्छे दिखाई देने वाले, लेकिन अन्दर से नीच, व्यक्तियों का गुट मनोवांछित अवसर पा ही जाता है और अपने लाभ के लिए स्वामिभक्तों पर अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से दोष लगाते हैं; जब कि महापुरुष कभी कभी, कार्य की अधिकता के कारण, अपने मन में किए गए संकल्प भूल जाते हैं और स्वामिभक्तों पर संदेह करने लगते हैं, और अपनी ही शक्ति की नीवों को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं।"

हेमू का उत्थान

अबुल फजल के शब्दों में "संक्षेप में, यह दुष्ट व्यक्ति शीघ्र ही असत्य तथ्यों को सामने रख-रख कर सलीम खां का स्नेह-पात्र बन गया और शासन में अपना अधिकार जमा लिया। जब कि सलीम खां के जीवन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सीमा पूर्ण हो चुकी थी और भारत के दुराचारियों की प्रबलता की अवधि पूर्वोक्त सलीम खां के चचेरे भाई मुबारिज खां तक हस्तान्तरित हो चुकी थी, हेमू ने उसको सांसारिक विषयों से विमुख पाया; और उसने सम्पूर्ण शासन पर अपना अधिकार कर लिया तथा श्रेष्ठतम पदों पर आरूढ़ हो गया। मुबारिज खां के पास, जो साधारणत: आदिली (अत्याचारी) के नाम से प्रसिद्ध था, उपाधि (बादशाह की) के अतिरिक्त कुछ न रहा। हेमू ने सब पदों पर नियुक्तियों का, पदच्युत करने का, और न्याय-वितरण का कार्य अपने आप संभाल लिया। अपनी दूरदर्शिता के कारण इसने शेर खां और सलीम खां के खजानों और उनकी हाथी-शालाओं, पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। उनकी संचित वस्तुओं व द्रव्यों को भी उसने मुक्तहस्त से निबटा दिया। उसके ऋणी उसको पूजते थे और उसके वचनो का पालन कर देते थे। कुछ दिनों तक उसने 'राय' की उपाधि धारण की। तत्पश्चात उसने "राजा" की उपाधि ग्रहण कर ली और "राजा विक्रमाजीत" की पद्धति अपना ली[१]। इस प्रकार उसने मूर्खतावश अपने आप को बड़ी बड़ी उपाधियाँ दे डालीं। दूरदर्शिता से उसने अदली की नाम-मात्र की प्रभुता बनाए रखी और उसके शत्रुओं के विरुद्ध बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी। अपने पराक्रम और साहस द्वारा वह विजयी हुआ और उसने महान कार्य सम्पन्न किए। वह साहस और क्षमता के लिए प्रसिद्ध हो गया। धीरे धीरे वह इतना आगे बढ़ गया कि उसने महामान्य शहंशाह की प्रभावशाली सेना तक से टक्कर लेने का साहस किया। परन्तु क्योंकि यह पवित्र व्यक्तित्व, अच्छे और बुरे की कसौटी थी, उसके खोटे सिक्के का परीक्षण हो गया और उसका काला अस्तित्व संसार को प्रकाशित करने वाले न्याय के प्रकाश से नष्ट हो गया…………………२।"

अराजकता के दिन—

समस्त समकालीन वृत्तान्तकारों का इस पर एकमत है कि इस्लाम शाह की मृत्यु, स्थान-स्थान पर विद्रोह हाने के लिए, एक संकेत मात्र था।

१—तथ्यों से पुष्टि नहीं होती है। चुनार के युद्ध के बाद अदली ने ही यह उपाधि उसको प्रदान की थी।

अलबदाऊनी ने भी बंगाल में एक अन्य सेना नायक पर विक्रमाजीत की उपाधि का प्रदान किए जाने का उल्लेख इन शब्दों में किया है (पृ०१८४)।

और सरहोर हिंदी बंगाली ने (तबाकाती अकबरी के अनुसार 'श्रीधर'-इलियट-५-३७८) जो लोदी की मृत्यु का उकसाने वाला था और जिसे विक्रमाजीत की उपाधि मिल चुकी थी, एक नाव में अपने खजाने रखे और उसका पीछा किया।"—मुन्तखाब-उत-तवारीख। लोप द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद—पृ० सं० १८४।

२—अबुल फजल: अकबरनामा : जिल्द १ : पृ०—६१५-६१९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकेन्द्रीयकरण प्रवृत्तियों ने जो उसके शासन में पहले से ही विद्यमान थीं, फिर से सिर उठाया। "मखजन" के अनुवादक डॉर्न के शब्दों में "एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक, एक नगर से दूसरे नगर तक, सब विद्रोहाग्नि में प्रज्ज्वलित हो गए थे।" असंतुष्ट अफगान सामन्त अब सब स्वतंत्र थे और वे चाहे जिसको अपना नेता चुन सकते थे। इस्लाम शाह की मृत्यु के कुछ समय पश्चात ही, सूर वंश के चार अफगान प्रधान क्षेत्र में थे—मुबारिज खां, अहमद खां, इब्राहीम खां और मुहम्मद खां। रिक्त सिंहासन के लिए यह चारों भीषण प्रतिद्वंदी थे।

इस्लाम शाह की वसीयत के अनुसार फीरोज खां, जो अल्प व्यस्क था, उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया; लेकिन कुछ दिन बाद ही मुबारिज खां ने, जो फीरोज खां का मामा था, उसकी, अर्थात अपने ही भानजे की, हत्या कर दी। नियामतउल्ला द्वारा रचित "मखजन अफागानिया" में निर्दोष बालक की भयानक हत्या का निम्नलिखित दुख भरा वृत्तांत मिलता है[१]।

"लेकिन ३ दिन के पश्चात् शेरशाह के सगे भाई मियाँ निजाम के पुत्र और इस्लाम शाह के बहनोई मुबारिज खां, जिसको उसकी बहन बीबी बाई ब्याही थी और जो उसकी इतनी कृपा का पात्र था कि वह अपना कक्ष बिना उसकी अनुमति के नहीं बदलता था और उसकी संगति से प्रसन्न होता था, इस्लाम शाह के निजी कक्षों में अपनी बहन को देखने के बहाने से घुसा और फिरोज खां को, उसकी मां बीबी बाई की सब प्रकार की विनती और विलाप करने पर भी, मार डाला। बीबी बाई ने कहा, "मैं प्रार्थना करती हूं, मेरे बेटे को मत मारो; मैं उसको अपनी आंखों का एक मात्र प्रकाश समझती हूं और मैं सौगन्ध खा लूँगी कि मैं राज्य-सिंहासन के सब अधिकारों को त्याग दूँगी; और अपने बेटे को लेकर दक्षिण की ओर चली जाऊँगी। मैंने जो तुम्हारी सेवाएँ की थी उन्हें याद करो, जब कि इस्लाम शाह तुम्हें मारने का निश्चय कर रहा था, मैंने रो-रो कर उसे उसके निश्चय से रोका; और उसने मुझसे कहा कि यदि मैं अपने पुत्र को सिंहासन पर देखना चाहती हूँ तो मैं उसे ऐसा कर लेने दूँ। परन्तु मैंने ऐसा होते हुए भी, याचना पूर्वक और आसूओं के साथ, उससे कहा कि मेरे केवल एक भाई था, जिसकी मृत्यु से उसके साम्राज्य को कोई लाभ न होगा; और इस प्रकार उसे उसके उद्देश्य से रोकने में सफल हुई"। लेकिन इन भावपूर्ण विनतियों का इस निर्मम व्यक्ति पर कोई प्रभाव न हुआ, और उसने उत्तर दिया कि उसका पुत्र तो एक बालक था, और सिंहासन के नहीं, बल्कि खेल कूद के योग्य था। इसके साथ ही साथ उसने तलवार के वार से युवा राजकुमार को शहीदों का ताज पहना दिया

२—नियामतउल्ला "दि मखजन-ए-अफागानिया: डार्न द्वारा अनुवाद।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और इस प्रकार अपने को दोनों लोक की घृणा का पात्र बना दिया[१]। इस प्रकार मुबारिज खाँ ने सिंहासन प्राप्त किया और अफगान सामन्तों को अपने को सम्राट स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। राजकुमार फिरोज ने, जो १२ वर्ष का ही था, इस प्रकार केवल तीन दिन राज्य किया और ग्वालियर के सिंहासन के लिए अपने जीवन दान के रूप में दण्ड भुगताया[२]।

फिरिश्ता भी कहता है कि "निजामुद्दीन अहमद बक्शी अपने अकबर के इतिहास में लिखता है कि सलीम शाह अपनी पत्नी बीबी बाई से प्रायः कहता था कि यदि उसे अपने बच्चे फिरोज के लिए थोड़ा सा भी स्नेह हो, तो वह अपने भाई मुबारिज खाँ को फांसी पर चढ़ा देने के लिए स्वीकृति दे दे 'और नहीं तो वह उसके द्वारा प्रथम अवसर पर अपने भानजे को मार डालने की बात को निश्चित समझले'।" लेकिन दयालु हृदय वाली बहन उत्तर दिया करती थी "मेरा भाई व्यसन और आनन्द का इतना प्रेमी है कि उसे राजसी चिन्ताओं का भार उठाने का अवकाश नहीं।" लेकिन भाई ने इसके विपरीत व्यवहार किया और एक निर्दोष आत्मा का निर्दयतापूर्वक अन्त कर दिया।

मुबारिज खां—

वह २ नवम्बर १५५३ ई० को सिंहासनारूढ़ हुआ और सुल्तान मुहम्मद आदिल की उपाधि ग्रहण की; तथा सिक्के बनवाने और अपने नाम में खुतबा पढ़वाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। वह शेर शाह के छोटे भाई निजाम खां का पुत्र था। 'अकबरनामा' के लेखक के अनुसार निजाम खां के पुत्र तथा पुत्रियों, सभी का उत्थान एक साथ हुआ:—"इस निजाम के एक पुत्र और तीन पुत्रियां थी, और आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि पुत्र एक शासक बन गया और तीन पुत्रियों के पति उच्च पद पर आसीन हुए। उनमें से एक तो सलीम खां था, दूसरा सिकन्दर सूर और तीसरा इब्राहीम सूर[३]'।

आरम्भ में अदली ने खवास खां के भाई शम्स खां को अपना प्रधान मंत्री मनोनीत किया।[४] लेकिन उपाधियां धारण कर लेने के बाद भी, वह अडली (मूर्ख)[५] कहलाता रहा। उसको यह उपनाम उसकी बर्बरता, दुराचरण

१—डार्न:दि मखजन: अंग्रेजी अनुवाद।
२—फिरिश्ता: ब्रिग्स-अंग्रेजी अनुवाद: मुस्लिम शक्ति के उत्थान का इतिहास जिल्द २-पृ० १४१-१४२: सलीम शाह सूर—लंदन १८२९।
३—अबुल फजल: अकबरनामा: जिल्द १-पृ० ६१७।
४—नियामतउल्ला: दि मखजन-ए-अफागानिया:
५—तारीख-ए-दाऊदी के पाठ्य में, यह "अंधली" दिया है, जिसका अर्थ है "अंधा"। अबुल फजल "अदली" लिखता है जिसका अनुवाद बेवरिज ने 'अत्याचारी' किया है। डार्न भी 'अदली' लिखता है और उसका अर्थ "मूर्ख" बताता है — अकबरनामा १-पृ० ६१७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
और मूर्खतापूर्ण विधियों को अपनाने के कारण दिया गया था। साधारण जनता का उसकी क्षमताओं के बारे में बहुत क्षुद्र मत था और जैसा कि डा० ईश्वरी प्रसाद ने कहा है—"निराशाजनक रूप से भ्रष्ट और सार्वजनिक विषयों के प्रति पूर्णतः उपेक्षित, वह संसार में अंतिम व्यक्ति था जो अफगान साम्राज्य को उस सर्वनाश से बचा सकता जिसमें पड़ने का उसे भय था। उपहार बांटने का आदी होने के कारण और बच्चों की भांति खर्चीला होने के कारण, उसे भ्रष्टों में लोक प्रिय बनने का आभाव न था।"[१] लेकिन बिना किसी भेद या संकोच के विशेष कृपाएं दिखा-दिखा कर अफगान सामन्तों को मनाने में वह उस समय सफल हो गया। नियामतउल्ला ने इसका रूचिकर उल्लेख इन शब्दों में किया है[२]।

"प्राचीन इतिहासों में यह पढ़कर कि उदारता एक सम्राट का विशेष गुण था उसने, उसकी (प्राचीन सम्राट की) नकल करके अपने खजानों के द्वार खोल दिए और लोगों को उपहारो से लाद दिया। वह हर दिशा में तीर फेका करता था, जिसकी नोक का मूल्य पाँच सौ टंका था; और उस मकान के स्वामी को, जिसमें वे तीर गिरते थे, उनको वापिस लाकर देने पर पांच सौ टंके देता था।"

हेमू का उज्ज्वल उत्थान

इस प्रकार की अराजकता की परिस्थितियों में जब कि अफगान संगठन आन्तरिक विभेदों द्वारा विछिन्न हो गया था और अदली जैसी योग्यता का व्यक्ति शिखर पर था, भारतीय राजनैतिक कार्यक्षेत्र में हेमू के स्तर का शूरवीर और राजनीतज्ञ सहसा देदीप्यमान हुआ। अबुल फजल के शब्दो में हेमू के इस आश्चर्यजनक उत्थान का वर्णन पहले आ चुका है। वह अपनी विद्वत्ता, दक्षता तथा कार्यपटुता से मुबारिज खां जैसे विलास प्रिय, शासकी कार्यों से अन्यमनस्क राजा का प्रधान मंत्री बना। जिस समय उत्तरी भारत में चारों ओर अराजकता फैली हुई थी, हेमू ने शासन की बागडोर अपने हाथ में संभाली। सैकड़ों वर्ष पश्चात् भी उसके कठिन प्रशासकीय कार्य की महानता व गुरुता झलकती है[3]........

दूसरा वृत्तान्तकार—मखजन-ए-अफागानियाँ का लेखक—हेमू के अद्भुत उत्थान का वर्णन इस प्रकार करता है—

"इस समय, हेमू, जो रिवाड़ी में एक साधारण व्यापारी था और बाद में राजसी पाकशाला का निरीक्षक हो गया, उच्च पद पर आसीन

१—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूँ : पृ० १९४
२—डार्न: नियामतउल्ला के "दि मखजन-ए-अफागानिया" का अंग्रेजी अनुवाद—
३—अबुल फजल : अकबर नामा : १ पृ०................६१९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कराया गया, धीरे-धीरे सुल्तान आदिल या वस्तुतः अडली (मूर्ख) के साथ उसकी घनिष्टता हो गई ।[1]

सब समकालीन लेखकों का मत है कि उस समय पहले ही अराजकता थी और विभिन्न अफगान प्रतिद्वंदियों के बीच गृह-युद्ध की दशा उपस्थित थी। एक प्रासंगिक प्रश्न उठता है कि हेमू के मुख्य-मंत्रित्व प्राप्त कर लेने पर या तो 'अराजकता आश्चर्यजनक रूप से बिगड़ गई'[2] या कुछ समय के लिए अन्यथा अव्यवस्थित अफगान राज्य पद्धति में, एकता और योग की झलक फिर से दिखाई दी ।

अबुल फजल द्वारा किया गया निम्नलिखित उल्लेख उपर्युक्त प्रश्न का उचित उत्तर देता है—

"हेमू और इब्राहीम, जो सल्तनत के लिए दावेदार थे, के बीच युद्ध हुए, और जीत सदा हेमू की हुई । सुल्तान मुहम्मद भी, जिसने बंगाल में राजा की उपाधि धारण कर ली थी, हार गया और सर्वनाश के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य किया गया। हेमू के ताज कर्रानी और रूकु खाँ नुहानी से भी संघर्ष हुए और **उसने उन्हें हरा दिया। उसने मुबारिज खां के शत्रुओं से बाइस लड़ाइयां लड़ी, और सभी में विजयी हुआ।**"

संक्षेप में यह हेमू की सफलताओं का सही वर्णन है, जिस पर साधारणतः 'अदली' जैसे स्वामी की सेवा करने का, उग्रतम अफगान सामन्तों से लड़ने का, और इतने पर भी झंडा ऊंचा किये हुए सफलता प्राप्त करने का बहुत ही कठिन कार्य-भार था। यह कोई छोटी सफलता नहीं थी। इसमें निःसन्देह अकेन्द्रीकरण में एकता, विषमता में समता और अशान्ति के सागर में शान्ति प्राप्त करने का पवित्र आदर्श निहित था।

१—डार्न : नियामतउल्ला का अंगरेजी अनुवाद : दि मखजन ।

२—अबुलफजल ने इस बात पर जोर दिया है कि—'जब प्रभुता मुबारिज खाँ के हाथ में आई, हिन्दुस्तान की परिस्थति पहले से भी खराब हो गई"—अकबरनामा पृ० ६१५—६१९ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय—४

हेमू की विजय

जब से अदली ने फिरोज की हत्या की, अफगान सामन्त उससे प्रत्यक्ष रूप से पृथक हो गए। इस्लाम का पुत्र सिंहासन पर सलीम शाही सामन्तों द्वारा आसीन कराया गया था ; लेकिन मुबारिज खां ने, शम्स खां की सहायता से, निर्दोष बालक राजकुमार को हटाकर सिंहासन छीन लिया। देश में आंतक और क्रोध की एक लहर दौड़ गई, और शम्स खां नए बादशाह को अधिक समय तक न संभाल सका। अदली के पास, हेमू के ऊपर निर्भर रहने के अतिरिक्त और कोई चारा न था, अस्तु हेमू ने उसकी ओर से मोर्चा संभाला, शासन की बागडोर अपने हाथों में ली, और अफगान सामन्तों की चुनौती, का बाएँ व दाएँ सामना करना आरम्भ कर दिया। कुछ अफगानों ने हेमू के हाथों में शक्ति का केन्द्रित हो जाना पसन्द नहीं किया, जिससे स्वभावतः अफगान मुखियाओं में उसके शत्रु उत्पन्न हो गए, जिन्होंने उसके प्राणों के विरुद्ध षडयंत्र करके, उसके अधिकार से विद्रोह किया। खुली मुठभेड़ हुई। विद्रोह में खड़े होने वालों में सलीम खां सूर सबसे पहला था। लेकिन इसका दमन आसानी से हो गया।

अजमेर में विद्रोह—

अजमेर में सूबेदार जुनैद खां ने विद्रोह किया। हेमू ने उसके विरुद्ध सेना के साथ कूच किया और उसके अधिकारी दौलत खां के विरुद्ध, युद्ध करके उसे हरा दिया। उसके बाद जुनैद खां स्वयं युद्धक्षेत्र में आया, केवल एक भारी हार खाने के लिए।[१] अदली, एक दूर स्थान पर हेमू की इस आशातीत विजय से अति प्रसन्न हुआ; और उसे तुरन्त अपना प्रधान मन्त्री बना दिया। इससे स्वभावतः अफगान मुखियाओं का द्वेष, ईर्ष्या और परिणामतः खुला द्रोह अवश्य जागृत हुआ होगा।

फरमुल्ली का निष्फल विद्रोह—

अदली अफगान सामन्तों में फैले हुए रोष के प्रति असावधान था, और वह उनकी शक्ति और विशेषाधिकारों के दमन की नीति पर चलता रहा।

१—डा० आर० पी त्रिपाठी-मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० १५८।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह इस्लाम शाह की नकल करना चाहता था, यद्यपि ऐसा करने की उसमें न तो क्षमता थी, और न बुद्धिमता। उसने जागीरों का फिर से बटवारा करना शुरू कर दिया। वह शेरशाही और इस्लामशाही व सामन्तशाही को समाप्त करके अपना एक निजी अफगान सामन्तवर्ग उत्पन्न करना चाहता था। इस नीति की असफलता पहले से ही निश्चित थी। कन्नौज सूबे के सूबेदार मुहम्मद खां फरमुल्ली का सामना करने की उसकी चेष्टा के फलस्वरूप दरबार में खुले रूप से उपद्रव हुआ। एक दिन, दरबार-ए-आम में, उसने (अदली) ने अपने मुखियाओं की सम्पत्ति और शासन बांटना आरम्भ किया; अन्य के साथ-साथ उसने मुहम्मद खां फरमुल्ली से कन्नौज सूबे को लेकर सरमस्त खां-सुरोबन्नी को दिए जाने की आज्ञा दी। एक साहसी युवक, सिकन्दर खां सुपुत्र मुहम्मद खां ने जो वहाँ उपस्थित था, ललकार कर बादशाह से कहाँ, "तो क्या मेरी सम्पत्ति कुत्तों के बेचने वालों को दे दी जायगी ?" [१]

"मुहम्मद खां फरमुल्ली ने, जो वहाँ उपस्थित था, अपने पुत्र की उग्रता को रोकने का यत्न किया, लेकिन इससे केवल उसकी उत्तेजना और भड़क उठी। उसने अदली पर उसके परिवार का समूल नाश करने की योजना का आरोप लगाया। सरमस्त खां ने जो सम्पत्ति को पाने वाला था, असाधारण बल का व्यक्ति होने के कारण सिकन्दर को गले से पकड़ लिया। युवक प्रतिद्वंदी ने, अधीर प्रकृति का युवक होने के कारण, इसका प्रत्युत्तर दिया और सरमस्त खां को जान से मार डाला। हताश हो जाने पर उसने उन सब पर जिन्होंने उसका प्रतिरोध किया, प्रहार करना आरंभ कर दिया। कुछ मुखिया वही पर मारे गये। उसके बाद उसने बादशाह पर भी आक्रमण कर दिया, जो सिंहासन से कूदकर हरम में घुस गया, और सिकंदर खां के पीछा करने पर उसने उसके सामने का दरवाजा बंद कर दिया, जिससे उसका आगे बढना रूक गया, और मुहम्मद शाह द्वार की चिटकनी चढाकर अपनी रक्षा कर सका।"[१] फिरिश्ता का वर्णन नियामतुल्ला के वर्णन से थोड़ा सा भिन्न है। इसमें केवल उल्लेख है कि "अदिली इस भयावह दृश्य को देखने पर अपने निजी कक्ष में भाग गया।"[२] सामन्तों में से अधिकतर के भाग जाने पर, अदली का बहनोई इब्राहीम खां सूर उसकी रक्षार्थ आया। सरमस्त खां को किसी प्रकार घेर लिया गया और उस पर आक्रमण किया गया। उसके टुकड़े २ कर दिए

१—फिरिश्ता : अंगरेजी : अनुवाद : जिल्द २ पृ० १४६: मखजन के अनुसार : अंगरेजी अनुवाद : सरमस्त खां को पत्थर बेचने वाला कहा गया है।

१—फिरिश्ता : जिल्द २ : अंगरेजी अनुवाद : ब्रिग्स : पृ० १४६

२—नियामतउल्ला : दि मखजन : अंगरेजी अनुवाद : डार्न।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गए। तत्पश्चात् दौलत खां लोहानी ने जान की परवाह न करने वाले युवक के पिता मुहम्मद खां फरमुल्ली का अन्त कर दिया।

ऐसी अनुचित घटनाओं का प्रभाव यह हुआ कि अफगान सामन्तों पर अदली का प्रभाव और शक्ति तेजी से घट गयी। उनमें से कुछ, अपनी मान रक्षा के लिए और कुछ अपने गढों को दृढ़ करने के लिए अपने अपने प्रदेशों की ओर चले गए। अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं है कि दरबार में हेमू उपस्थित था या नहीं, लेकिन संभवत: वह नहीं था। तत्पश्चात अदली ने घबड़ाहट के मारे उसको स्थिति संभालने का कार्य सौंप दिया।

ताज कर्रानी का पीछा—

एक दूसरा प्रमुख अफगान सामन्त, जिसे मुहम्मद फरमुल्ली के संकट का आभास मिल चुका था और जिसने उसे ग्वालियर के दुर्ग के फाटक पर कुछ समय पूर्व सावधान भी कर दिया था, दरबार के भवन से बाहर ही रहा। 'मखजन' के लेखक के अनुसार उसने "उसे परिषद की शोचनीय दशा समझा दी, और उसे बताया कि परिस्थतियां इतनी बदल गई थीं, कि अदली का उस समय न तो कोई आदर करता था और न उससे कोई डरता था, क्योंकि परिषद् में ही सब उपस्थित सदस्यों द्वारा अनसुनी बातें कही गई थीं और उन्होंने अभूतपूर्व ढंग से व्यवहार किया। इसलिए सबसे सुरक्षित और भयरहित मार्ग यही था कि परिषद् में अब और अधिक भाग न लिया जाय।"[१] ताज कर्रानी ने फरमुल्ली से अपने से मिल जाने को और परिषद् में न उपस्थित रहने को कहा, लेकिन फरमुल्ली ने उसके शब्दों पर कोई ध्यान नहीं दिया और उसे अपने पुत्र की उत्तेजना के कारण दुर्दिन देखने पड़े। ताज कर्रानी सावधान हो गया और जैसे ही उसने हत्याओं के बारे में सुना, उसने सामान बांधा और पूर्व की ओर चला गया। अपने सब आश्रितों को लेकर वह "बंगाल की दिशा में चलने को अग्रसर हुआ।"[२]

छित्रामऊ की लड़ाई—

जैसे ही अदली ने ताज कर्रानी के जाने का समाचार सुना, उसने स्वयं उसका पीछा करने का निश्चय किया। लेकिन हेमू के आश्वासन दिलाने पर वह भागने वाले से निबट लेगा, अदली ने उसे पीछा करने का कार्य सौंप दिया। हेमू ने इस्लाम शाह के अति निर्लज्ज और खवास खाँ को बंदी बनाने वाले को[३]

१—नियामतउल्ला : दि मखजन : अंगरेजी अनुवाद : डार्न।
२—नियामतउल्ला : दि मखजन : अंगरेजी अनुवाद : डार्न।
३—डा० त्रिपाठी : मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन : पृ० १५८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आगरा से ८ मील दूर, छिब्रामऊ में पकड़[१] लिया। यद्यपि वह हेमू से हार गया, फिर भी वह बचकर चुनार भाग जाने में सफल हो सका।

हेमू की चुनार में विजय—

ताज कर्रानी ने, जबकि वह चुनार वापस जा रहा था, मार्ग भर को विध्वंस कर दिया। अपनी प्रगति में (उसने) जनता के धन और बादशाह की अन्य वस्तुओं पर कब्जा कर लिया, और अपने बन्धुओं और अन्य जाति भाइयों को, जिनकी खवासपुर टांडा के सूबे में भूमि थी, सौ हाथी दे दिए।[१] उनकी सहायता से उसने एक प्रभावशाली सेना एकत्र कर ली, जिससे बादशाह को स्वयं मैदान में आना पड़ा, और चुनार से ऊपर नदी के किनारों पर जो विद्रोही उसे मिले, वे हराए गए और भगा दिए गए।[२] ताज कर्रानी का पीछा करते समय हेमू के साथ अदली भी मिल गया और चुनार में एक भीषण संग्राम हुआ। अदली ने अपनी आँखों से हेमू की वीरता और रणचातुर्य्य देखा—और वह इससे इतना प्रभावित हुआ कि उसको "विक्रमाजीत" की सम्मानपूर्ण उपाधि प्रदान की। ताज कर्रानी की सहायता सुलेमान ईमाद और ख्वाजा इलियास ने की जिनके पास गंगा के किनारे के परगने थे और जो अदली के विरुद्ध लड़ने को उत्सुक थे। लेकिन हेमू ने उन सबको परास्त कर दिया।[३] यह बंगाल और बिहार के प्रचलन के बिलकुल अनुकूल था, जहां कि एक विजयी सेना-नायक को इस उपाधि से सम्मानित किया जाता था। अबुल फजल भी इसको मानता है कि हेमू ने यह उपाधि कुछ समय से ग्रहण कर ली थी।[४] इससे अल-बदाऊनी का यह कथन असत्य सिद्ध होता है कि हेमू ने यह उपाधि दिल्ली पर अधिकार प्राप्त करने के बाद अक्तूबर १५५६ ई० में धारण की थी।[५]

हेमू का बंगाल पर आक्रमण—

चुनार में कर्रानियों की करारी हार के बाद भी संकट समाप्त नहीं हुआ। ताजकर्रानी फिर किसी तरह बचकर जौनपुर पहुंचा, जहाँ वह अपने

१— खवासपुर टांडा : बंगाल की सीमा पर : डा० त्रिपाठी को देखिये—पृ० १५९ मुगल साम्राज्य।

२—फिरिश्ता : ई० टी० ब्रिग्स : जिल्द २ : पृ० १४६।

३—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं पृ० १९४ "दोनों सेनाएँ एक दूसरे से एक नदी के पार मिली जक तक कि हेमू अचानक तेजी के साथ, कुछ हाथियों सहित दूसरे किनारे पर पहुँच गया और उसने विद्रोहियों को एक हताश संघर्ष के बाद बुरी तरह परास्त कर दिया।"

४—अबुल फजल : जिल्द २ : अकबरनामा :

५—अल-बदाऊनी : पृ० - ७—अध्याय १ भी देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

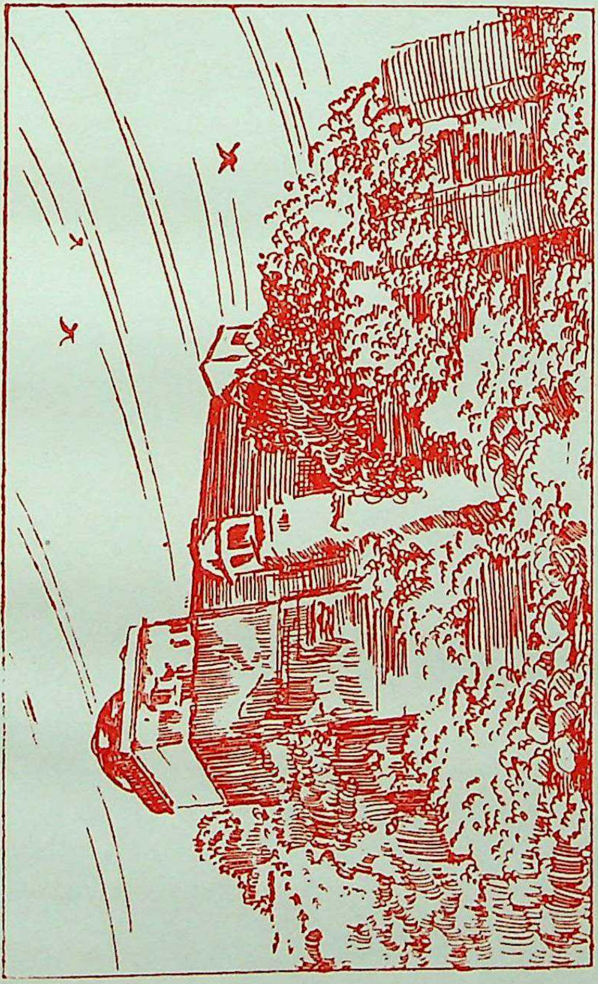

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाई अहमद खां से मिला और उसने पूर्व की ओर कूच करने का प्रबन्ध किया। हेमू ने अपने स्वामी अदली से चुनार में ही रुकने और उसको करीनियों से निपट लेने की आज्ञा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। आवश्यक अनुमति मिलने पर हेमू ने करीनियों के प्रधान का बंगाल की सीमाओं तक पीछा किया। ताज ने अपने भाइयों की शरण ली, जिनके पास खवासपुर टांडा के समीप जागीरें थीं।

इब्राहीम का पृथक किया जाना और कालपी की पहली लड़ाई—

अदली सामन्तों को अपने से पृथक करता रहा। दौलत खाँ जिलवानी और फिरोज खां काकड़ जैसे विख्यात व्यक्तियों को, जो उसके प्रति स्वामि-भक्त थे, उसके द्वारा क्लेश पहुँचाये जाने के कारण तथा दूसरे अफगान सामन्त भी उससे अलग हो गए[1]। उसके निजी रिश्तेदार उससे चौकन्ने हो गए। उसे स्वयं भी अपने बहनोई इब्राहीम खां सूर से ईर्ष्या होती जा रही थी। उसने उसको बंदी बना लेने के लिए गोपनीय आदेश दिए; लेकिन उसकी पत्नी अदली की बहन ने जब अपने भाई की योजना सुनी, तो अपने पति को षडयंत्र से परिचित करा दिया, और वे तुरन्त चुनार से भाग गए। उसने बियाना, जहाँ उसके पिता गाजी खां हिंडौर के गवर्नर थे, की ओर प्रस्थान किया।[2] ईसा खां नियाजी को इब्राहीम का पीछा करने को कहा गया, और वह कालपी[3] के पास उस तक पहुँच गया; परन्तु पीछा करने वाले को भागने वाले ने हरा दिया।

इस सफलता से साहस पाकर और निर्भीक व भयरहित होकर हथेली में जान लेकर इब्राहीम खां ने ग्वालियर, दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया। इस समय अदली चुनार में ही था। इब्राहीम ग्वालियर से दिल्ली पहुँचा, वहाँ वह सिंहासन पर बैठाया गया और उसने राजसी ठाठ-बाट अपना लिया।

अदली और इब्राहीम –

जैसे ही अदली को, इब्राहीम द्वारा ग्वालियर और आगरा पर अधिकार किए जाने का समाचार मिला, उसने पश्चिमी क्षेत्र में शासनसत्ता अपहरण करने वाले का दमन करने की शीघ्रता की। इब्राहीम, उसका विरोध करने के

१—डा० त्रिपाठी : मुगल साम्राज्य का उत्थान व पतन : पृ० १५९ : "इन दो कुलीनों को हटाकर आदली शाह ने अपने हाथों अपने साम्राज्य की जड़ें हिला दी"।

२—फिरिश्ता : ब्रिग्स : जिल्द २—पृ० १४६-१४७।

३—डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर : जालौन : पृ० १२२ : १६ वीं शती में कालपी दिल्ली व बंगाल के मार्ग का मनचाहा विश्राम-स्थल बन गया था। सूर शासकों के काल में तो यह अनवरत युद्ध का क्षेत्र बन गया था। अकबर के राज्य काल में कालपी पश्चिम का द्वार बन गया व मध्यप्रदेश जाने का अड्डा बन गया।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थान पर उससे सन्धि की वार्त्ता करने लगा, यह प्रण करते हुए कि यदि बादशाह, हुसेन खाँ और अन्य मुखियाओं को क्षमादान के आश्वासनों सहित भेज दे, तो वह झुक जायेगा। तथा अदली का आधिपत्य मान लेगा। बादशाह ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली; और इब्राहीम खां ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपहारों द्वारा, आश्वासनों से और कह सुनकर उनको (हुसेन खां इत्यादि) बहका लिया। मुहम्मद शाह अदली, अपने साथ विश्वासघात हुआ देखकर चुनार भाग गया और पूर्वी प्रदेश के शासन से ही अपने को संतुष्ट रखा, फलतः इब्राहीम खां के पास पश्चिमी प्रदेश का अधिकार बना रहा।[1]

इसके बाद सिंहासन पर अधिकार कर लेने पर, इब्राहीम ने कई सामंतों को अपने रंग में रंग लिया और खुतबा अपने नाम से पढ़वाया। उसने सुल्तान मुहम्मद की उपाधि ग्रहण की, और दिल्ली में शक्तिसम्पन्न हो गया।

फर्राह की लड़ाई—

इब्राहीम अपनी प्रभुता का सुख कुछ समय के लिए भी न भोग सका, जबकि उसके अधिकार को, छोटी बहिन के पति और आदिलशाह के चचेरे भाई अहमद खाँ द्वारा चुनौती दी गई। अहमद खाँ ने, हैबत खाँ और दूसरे मुखियाओं, जो स्वर्गीय सलीम शाह द्वारा बनाए गए सामन्त रहे थे, की सहायता पाकर सिकन्दर शाह की उपाधि धारण कर ली, और आगरा की ओर १० या १२ सहस्र अश्वारोहियों के साथ कूच करते हुए उस शहर से २० मील के अन्दर कड़ा में डेरा डाला। इब्राहीम ने उसका प्रतिरोध ७० हजार घुड़सवारों से किया; और इससे उसके दल की शान का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। जब यह कहा गया है कि कम से कम २०० अफसर मखमल के अस्तरों से युक्त डेरों में स्थिति थे और प्रत्येक को नौबत बजवाने का विशेषाधिकार था।[2] दोनों प्रतिद्वंदी सेनाओं की एक दूसरे से, आगरा से १० कोस दूर एक गाँव फर्राह में मुठ-भेड़ हुई। सिकन्दर ने इब्राहीम की ऐसी प्रभावशाली सेना का विरोध करने के स्थान पर अपनी सेना को छोटी समझकर उसके पास शान्ति-प्रस्ताव भेजा। एक सन्धि प्रस्तावित की गई, जिसके अनुसार दिल्ली से लेकर हिन्द की पूर्वी सीमा

१—फिरिश्ता : ब्रिग्स : जिल्द २—पृ० १४६।
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : सन् १५५४ ई० में इब्राहीम सूर ने कालपी पर अधिकार कर लिया था, परन्तु शीघ्र ही हेमू ने उसको वहाँ से निकाल बाहर किया। पृ० १२२ :

२—फिरिश्ता : ब्रिग्स : जिल्द—२ : पृ० १४७।
संगीत वाद्य जिसमें नौ वाद्य होते हैं—जो राजा से संबद्ध रहते थे पर उनके द्वारा गवर्नरों को भी प्रदत्त किया जाता था जिसको वह अपने शासन क्षेत्र में और राज परिवार की अनुपस्थिति में प्रयोग में ला सकते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक का संपूर्ण प्रदेश इब्राहीम का हुआ, और सिकन्दर को पंजाब और मुल्तान से अपने को संतुष्ट करना था। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित हुआ कि यदि अदली का बृहत कोष इब्राहीम के हाथ आया, तो उसमें दोनों का भाग होगा। लेकिन फिरिश्ता और नियामतउल्ला के कथनानुसार, इब्राहीम ने अपनी विशाल शक्ति के मद में शर्तों की ओर ध्यान ही नहीं दिया।[1] संघर्ष हुआ, जिसमें इब्राहीम की करारी हार हुई और इस भावना के अनुसार कि 'कम सख्या वाले बड़ी संख्या वालों को हरा देंगे' सिकन्दर को विजय प्राप्त हुई और इब्राहीम सम्भल की ओर भाग गया। इस समय तक हेमू भी (युद्ध के) रंग-मंच पर उपस्थित हो गया था, और जब इब्राहीम संभल से कालपी पहुँचा, हेमू ने उसे ललकारा।

कालपी की दूसरी लड़ाई—

अपने स्वामी के खोये हुए साम्राज्य को फिर से प्राप्त करने के प्रत्यक्ष उद्देश्य से दिल्ली की ओर कूच करने की हेमू की तैयारियों का निम्नलिखित वर्णन मिलता है—

"इसी समय अदली ने हेमू को, जिसे उसने अपना वजीर मनोनीत किया था, असंख्य सेना से, पहाड़ जैसे ऊँचे हाथियों से और सुसज्जित सशस्त्र-सेना से, सम्पन्न करके दिल्ली को भेजा। कालपी पहुँचने पर हेमू ने पहले इब्राहीम को प्रेरित करने और युद्ध के लिए विवश करने का निश्चय किया। इब्राहीम संघर्ष के बाद हार गया और अपने पिता के पास भाग गया, जो उस समय कालपी का गवर्नर था, जहाँ दोनों ने अपने को दुर्ग में सुरक्षित कर लिया।[2]

बयाना का घेरा—

हेमू इब्राहीम का पीछा करता रहा और बयाना के दुर्ग को घेर लिया, जिसमें पिता व पुत्र दोनों दृढ़ता पूर्वक सुरक्षित थे। यह घेरा तीन मास तक पड़ा रहा।[3]

खनवा की लड़ाई—

९६२ हिजरी अथवा १५५४ ई० बयाना के घेरे के समय में आवश्यक सहायता पाकर इब्राहीम केवल एक बार दुर्ग से बाहर निकला और उसने बयाना से १० कोस दूर खनवा में एक युद्ध किया। लेकिन हेमू ने उसे फिर से किले में लौट जाने के लिए बाध्य कर दिया।[4]

१—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूँ : पृ० १९६—"इब्राहीम ने इन शर्तों के लिए अपनी स्वीकृति दे दी, लेकिन उसके अफगान समर्थकों ने उनको, निर्बलता का एक चिन्ह समझा। कार्यवाही कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गई, लेकिन इसमें अधिक बिलम्ब न किया जा सका।"

२—नियामतउल्ला : डार्न-'मखजन' का : अँग्रेजी अनुवाद।

३—फिरिश्ता-ब्रिग्स : अंग्रेजी अनुवाद : पृ० १४९।

४—फिरिश्ता : ब्रिग्स : अंग्रेजी अनुवाद : पृ० १४९।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आगरा का युद्ध—

इस तीन माह के संघर्ष के निर्णय के शुभ अवसर पर जब कि हेमू, इब्राहीम को घुटने टेक देने के लिए बाध्य करने वाला ही था, अदली बंगाल के शासक मुहम्मद शाह सूर के विद्रोह से आतंकित हो गया। बंगाल के शासक के इस अप्रत्याशित आक्रमण ने अदली को विवश कर दिया कि वह हेमू को बयाना के घेरे से वापस बुला ले और इब्राहीम नें उसकी इस सहसा वापसी से साहस पाकर उसका पीछा किया। आगरा के समीप पहुंच कर उस पर आक्रमण किया। लेकिन फिर हार जाने के कारण, उसे बयाना में अपने पिता के पास भाग जाना पड़ा"।[१]

एक अन्य वर्णन के अनुसार "जब हेमू इसके (वापिस बुलाए जाने) के फलस्वरूप, मूंदागूर तक लौट गया था, इब्राहीम किले से बाहर निकला और उसका पीछा किया, लेकिन परास्त होने के कारण और अपने पिता के सम्मुख जाते हुए लजाने के कारण, उसने अपना मार्ग बदलकर पटना की ओर कूच कर दिया।" इस घटना का एक और भी भिन्न वर्णन है जिसके अनुसार इब्राहीम पहले पटना की ओर नहीं अलवर की ओर भागा। जहां उसे हाकिम हाजी खां से सहायता मिली और हेमू के विरुद्ध लड़ने के लिए उसने पुनः शक्ति जुटा ली।

अलवर का युद्ध—

शत्रुओं की इस नई गुटबन्दी का सामना करने के लिए और स्वयं को स्वतन्त्र रखने के लिए तथा बंगाल के मुहम्मद खां सूर का सामना करके अपने स्वामी अदली के आवश्यक आदेश को मानने के लिए हेमू ने अपने भतीजे महिपाल को अपनी सेना के एक भाग के साथ इब्राहीम का पीछा करने को नियुक्त किया। एक संघर्ष हुआ और हेमू की सेना ने महिपाल के नेतृत्व में इब्राहीम को हरा दिया। इब्राहीम बयाना में अपने पिता के पास लौटने के लिए बहुत लज्जित था। फलस्वरूप वह पूर्व की ओर भाग गया।[२]

"लेकिन स्थानीय (पटना के) राजा, राजा रामचंद को अपनी ओर मिलाने में असफल होने पर उसको युद्ध लड़ना पड़ा जिसमें वह पराजित हुआ और बंदी बना लिया गया। राजा, उदारता और नीति दोनों के कारण सदैव उसे उच्चतम स्थान देता था, जबकि स्वयं एक श्रेणी नीचे बैठता था; लेकिन वहाँ कुछ समय बिता लेने के बाद वह मियाना के अफगानों द्वारा बुलाया गया, और इसीलिए मालवा[३] चला गया। पर वहाँ अपना स्वागत न होने के कारण

१—नियामतउल्ला : डार्न के अनुसार : मखजान का अंग्रेजी अनुवाद : यह युद्ध मुंदागूर में हुआ था।

२—नियामतउल्ला : अँग्रेजी अनुवाद-डार्न-"दि मखजन" :

३—९६२ : १५५४ ई० फिरिश्ता के कथनानुसार अफगानों से बाजबहादुर ने युद्ध किया और हरा दिया—जिल्द—२ पृ० १४९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह बंगाल की ओर चला गया, जहाँ उस समय (वर्ष ९७५) सुलेमान कर्रानी ने उड़ीसा के जिलों पर पूर्ण प्रभुता स्थापित कर ली थी और राजीनामा होने पर और आश्वासन दिए जाने पर उसकी नौकरी कर ली, पर उसके द्वारा छल से उसकी हत्या कर दी गई।"

छुपुर्ग - हट्टा का युद्ध—

इब्राहीम को हराकर और अपने भतीजे महिपाल द्वारा उसका पीछा करने का प्रबन्ध करके हेमू पूर्व की समस्याओं को सुलझाने तथा घटनाओं पर ध्यान देने के लिए तेजी से चुनार की ओर बढ़ा। बड़ी सेना के साथ उसने बंगाल के शासक का पीछा करना आरम्भ किया; बंगाल शासक उससे बचता रहा और चालाकी से घेरे से निकल कर पश्चिम की ओर भाग खड़ा हुआ। "..... .... वह रोहतास[1] के पास की पहाड़ियों को पार करके बुंदेल खण्ड के प्रदेश में घुसा, जहाँ हेमू द्वारा पीछा किए जाने पर कालपी से ३० मील दूर छुपुर्ग-हट्टा नामक गाँव में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई, और बंगाल का मुहम्मद शाह सूर मारा गया।"[2] नियामतउल्ला के कथनानुसार "इब्राहीम सूर की हार के बाद अदली के पास वापस लौटते हुए, हेमू ने छुपुर्ग हट्टा के समीप मुहम्मद खां गूरिया से युद्ध किया, उसे मार डाला और बहुत सा लूट का माल हस्तगत किया। उसने अब दुगुने उत्साह के साथ, ताज कर्रानी का नाश करने के लिए बिहार की ओर कूच किया।"[3] अन्य वृत्तान्तों के आधार पर बताया गया है कि मुहम्मद खाँ परास्त होने के पश्चात् जमुना में डूब कर मर गया।

सिकन्दर शाह सूर —

जब कि हेमू पूर्व की समस्याओं तथा परिस्थितियों को सुलझाने में व्यस्त था और बिहार और बंगाल में अदली के विपक्षियों का नाश कर रहा था, अफगान साम्राज्य के पश्चिमी भाग में अदली के एक अन्य रिश्तेदार, सिकन्दर शाह सूर को पूर्ण छूट मिल गई थी, जिसने इब्राहीम से दिल्ली और आगरा का अधिकार छीन लिया। समकालीन अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं है कि हेमू ने सिकन्दर के पक्ष में कोई भाग लिया अथवा नहीं, पर यह स्पष्ट है कि उसने

१—रोहतास : दक्षिण-पश्चिमी बिहार में है : यह गक्खर प्रदेश (पंजाब) में टोडर मल खत्री की सहायता से शेरशाह द्वारा निर्मित रोहतास दुर्ग से भिन्न है।

२—फिरिश्ता : ब्रिग्स : जिल्द २ पृ० १४९। इलियट : खण्ड ४ : पृ० ५०७ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : जालौन : १९०९ : के अनुसार छुपुर्ग-हट्टा की दूरी कालपी से २२ मील बतायी गयी है। पृ० १२२ :

३—नियामतउल्ला : दि 'मखजन' - डार्न द्वारा अंग्रेजी अनुवाद।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके प्रभावशाली अफगान शत्रु इब्राहीम को कार्य-क्षेत्र से हटा दिया। यदि अदली हेमू पूर्व की ओर वापस न बुला लेता, तो या तो वह सिकन्दर का साथ देता या उसका विरोध करता। लेकिन सिकन्दर हिजरी ९६२ में (१५५४ ई०) आगरा में सिंहासनारूढ़ हुआ ही था कि उसको उत्तर-पश्चिम से मुगलों के दूसरे आक्रमण का सामना करना पड़ा।

सिकन्दर ने अपने आधीन अफगान सामन्तों को एकत्र किया, और उनसे इस प्रकार बोला:—[1]

"मैं अपने को आप लोगों में से एक समझता हूं। अबतक जनहित का कार्य करके भी, मैं किसी उच्चता का दावा नहीं करता हूं। बहलोल ने लोदी वंष को कीर्ति और प्रतिष्ठा तक पहुंचाया; शेरशाह ने सूर वंश को जगमगाया और अब अपने पिता की विजयों का उत्तराधिकारी मुगल हुमायूं हम सबका नाश करने और अपना शासन पुनः स्थापित करने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। इसलिए यदि आप सच्चे हैं और आपसी भेदभाव और शत्रुता को मिटा दे, तो हम अपने साम्राज्य को अब भी बचा सकते है। लेकिन यदि आप मुझे शासन के योग्य नहीं समझते तो आप अपने में से किसी एक अधिक योग्य नेता अथवा अन्य दृढ़ व्यक्ति को चुन लें, ताकि मैं भी उसके प्रति राजभक्ति की शपथ खा सकूं। मैं बहुत विश्वास पूर्वक उसकी सहायता करने का वचन देता हूँ और साम्राज्य को उन अफगानों के हाथों में सुरक्षित रखने का प्रयास करूंगा, जिन्होंने गत कई वर्षों से अपने पराक्रम द्वारा इसे सुरक्षित रखा है।

सिकन्दर ने इस प्रकार अफगानों का विश्वास प्राप्त किया, जो बहुत ही कम समय तक बना नहीं रहा। बहुत शीघ्र उनमें आपस में सम्मान और पदों के लिए झगड़े उठ खड़े हुए और फूट की ज्वालाएँ फिर से धधक उठीं और पहले से भी अधिक तीव्रता से प्रज्ज्वलित हुई। यहाँ तक कि अफगान संगठन बिल्कुल खोखला हो गया। ऐसी संकटमय स्थिति में हुमायूं ने, फिर से दिल्ली का सिंहासन पाने के लिए, हिन्द की ओर कूच किया। हेमू ने, जिसने पूर्व में एक विशिष्टता प्राप्त कर ली थी, चुनार व जौनपुर में अपनी स्थिति द्रढ़ कर ली थी, बिहार और बंगाल को आधीन कर लिया था और उसका इटावा कालपी ग्वालियर और अलवर पर पूर्ण आधिपत्य हो गया था। हेमू मुगलों के इस नवीन आक्रमण को स्थिर चित से नहीं देख सका। उसके नाम मात्र के स्वामी को उस पर पूर्ण विश्वास था और उसने हेमू के पक्ष में लगभग सभी अधिकार त्याग दिये थे। वह चुनार में रहकर ही संतुष्ट था। इस मध्य में सिकन्दर ने मुगलों के दलों का सामना किया, सरहिन्द के निकट हार खाई और शिवालिक पहाड़

१—नियामतउल्ला : दि मखजन; डार्न द्वारा अंग्रेजी अनुवाद।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की ओर चला गया।[1] अदली ने मुगलों का सामना करने के लिए हेमू को अपनी सेना को संगठित करने के आदेश दिए।

१—अल-बदाऊनी के कथनानुसार : "राज्याभिषेक के निर्णय के बाद शाही सेनाओं को सिकन्दर के विरुद्ध (जो) पहाड़ी जिले में (था) लगाया गया। सिकन्दर तीन मास तक युद्ध करता रहा, लेकिन अन्ततः हार गया"। पृ० सं० ४ : लोव द्वारा अंग्रेजी अनुवाद : देखिए पृ० १२ तथा ९६ : सिकन्दर शिवालिक पहाड़ियों से जौनपुर आया : वह गौड़ प्रदेश की जागीर चाहता था। उसकी यह माँग स्वीकार होने के पश्चात् वह बंगाल चला गया जहाँ दो वर्ष पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय—५

हुमायूँ का अल्पकालीन-शासन तथा हेमू

ग्वालियर में इस्लाम अथवा सलीम शाह रुग्ण हुआ तथा २२ जिलकदा हिजरी ९६० तदनुसार ३० अक्तूबर १५५३ ई० में उसका देहान्त हो गया।[1] उसकी छोटे-छोटे सामन्तों की शक्ति क्षीण करने की नीति ने एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि अफग़ान शासन के प्रति किसी की भी आस्था नहीं रह गई थी। चारों ओर अस्तव्यस्तता, स्वार्थ-परता एवं पारस्परिक अविश्वास का साम्राज्य था। इसी समय हुमायूँ को दिल्ली तथा आगरा से से पुराने यवन हितैषियों से पत्र मिले, जिनमें उसके प्रत्यागमन के स्वर्ण अवसर की सूचना दी गई थी। परन्तु उस समय उसके प्रसाधन अत्यन्त स्वल्प होने के कारण "हुमायूँ ने उस निमंत्रण की ओर कोई ध्यान न दिया तथा अत्यन्त उदासीन हो गया।"[2]

अफगान साम्राज्य की शासन-सत्ता अदली के हाथों में आ गई तथा वह बिहार, जौनपुर एवं गंगा नदी के पूर्वी देशों में मान्य समझा जाने लगा। उसके प्रतिद्वन्दी पंजाब तथा बंगाल में सक्रिय रहे। उसके प्रधान मंत्री हेमू ने अत्यन्त सतर्कता पूर्वक उन प्रतिद्वन्दियों से २२ युद्ध किए और उनको परास्त कर सफलता प्राप्त की। सुल्तान इब्राहीम बुरी तरह से पराजित हुआ तथा सिकन्दर को सिवालिक पहाड़ियों तक पीछे हटना पड़ा। मेरठ, ग्वालियर, कालपी, इटावा तथा सम्भल के अफगान क्षेत्रीय प्रशासकों से शासनसत्ता स्वीकार कराने का श्रेय हेमू को था। यह हेमू का ही साहस था कि अनेक बड़ी बड़ी बाधाओं के होते हुए भी उसने अफगान योद्धाओं के साधन जुटाए, उनकी शक्ति संचित की, तथा मुगलों का भारतवर्ष में वापस आना असम्भव सा कर दिया।

१—डा० ईश्वरी प्रसाद-हुमायूं—पृ० १९३। अधिकतर इतिहासकारों ने इस्लाम शाह की मृत्यु की तारीख ९६१ हिजरी दी है, परन्तु डा० ईश्वरी प्रसाद के मतानुसार यह त्रुटिपूर्ण है। अबुल-फजल ९६० हिजरी लिखता है—जिल्द—?—पृ० ६१५। देखिए-होडी वाला द्वारा रचित—स्टडीज इन इन्डो-मुस्लिम हिस्ट्री—पृ० ४७७-८।

२—फिरिश्ता ब्रिग्स द्वारा अंग्रेजी अनुवाद-जिल्द—२ पृ० १८४-१९०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतवर्ष पर मुगलों का आक्रमण—

दिसम्बर १५५४ ई० में हुमायूं ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए तैयारी की। उसके साथ १५,००० घुड़सवार थे। मोमिन खां काबुल का अधिपति बनाया गया। पेशावर में बैरम खां कन्धार के अनुभवी सैनिकों के जत्थों के सहित उससे मिल गया।[1] पंजाब में रोहतास का दुर्ग जो कि अफगान शक्ति का मुख्य केन्द्र था, पंजाब के अफगानी प्रशासक तार खां द्वारा खाली कर दिया गया। लाहौर भी बिना अधिक प्रयास के मुगलों के अधिकार में आ गया। तथा अफगानों ने मुगलों को जलन्धर और सरहिंद पर अधिकार करने का भी अवसर दे दिया। फरवरी सन् १५५५ सरहिन्द तक का सम्पूर्ण क्षेत्र मुगलों के हाथ में चला गया। हुंमायूं ने द्वितीय रबी तदनुसार २४ फरवरी सन् १५५५ को लाहौर में प्रवेश किया। जनता ने उसका स्वागत किया क्योंकि इस क्षेत्र में अफगान अधिक लोकप्रिय नहीं थे। हुमायूं के सेवक जौहर ने अफगानों के संबंध में एक मनोरंजक कहानी, जिसे उसने हुमायूं द्वारा उस समय सुनी थी जब उसे पट्टी हेबतपुर का परगना दिया गया, का उल्लेख इन शब्दों में किया है :—

"जब मैं परगना में पहुँचा, मैंने पाया कि अफगान कृषकों में अपनी पत्नियों तथा बच्चों को हिन्दू महाजनों के पास, संचित धन में से ऋण दिये दिये गए धन राशि के प्रतिरूप में धरोहर रख देने की प्रथा प्रचलित थी; अतएव मैंने सर्वप्रथम कार्य यह किया कि सब अनाज एकत्र कर लिया, जो शुष्क कूपों तथा अन्य स्थानों में छिपाया गया था, तथा उसको बेचकर महाजनों के ऋणों का भुगतान किया और अफगान कृषकों के परिवारों को मुक्त कराया"।[2]

इस प्रकार एक आफताबची जौहर मालगुजारी एकत्रित करने वाले पद पर पहुंच गया तथा उसने अपनी कार्यपटुता से हुमायूं को संतुष्ट किया।

दीपालपुर का युद्ध—

पंजाब में २० हजार अफगान शब्बाज खां तथा नासिर खां के नेतृत्व में मुगलों से युद्ध में मोर्चा लेने के लिए दीपालपुर में एकत्रित हुए।[3] हुमायूं ने शाह अबुल माली (एक सैय्यद, जिसको हुमायूं पुत्र कहकर पुकारता था तथा जो तिरमिज्ञ का निवासी था) को एक मजबूत सैनिक टुकड़ी के साथ उनका

१—स्मिथ : विन्सेंट : अकबर पृ० २८—के अनुसार हुमायूं अपने खोये हुए ताज की पुनः प्राप्ति के लिए नवम्बर १५५४ ई० में भारत की ओर चला। देखिये : गुलबदन द्वारा हुमायूंनामा-अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका पृ०५१-५२।

२—जौहर-हुमायूं के संस्मरण : स्टुअर्ट द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद।

३—जौहर के कथनानुसार अफगान सैनिकों की संख्या लगभग १२,००० थी, परन्तु बयाजीद के अनुसार २०,००० थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुकाबला करने को भेजा। अफगान पराजित हुए तथा शाह अबुलमाली जीते हुए धन सहित लाहौर लौट गया।

मछीवारा का युद्ध—

पंजाब की इस दुर्घटना ने दिल्ली में अफगानों के सरदार सिकंदर शाह सूर को सावधान कर दिया। उसने हुमायूं के विरुद्ध ३०,००० अश्वारोहियों की सेना के सहित तार तार खां तथा हवीब खां को दिल्ली से रवाना किया। मछीवारा में सतलज नदी के तट पर दोनों सेनाओं ने डेरा डाला। शीतकाल के कारण सैनिकों ने तेज अग्नि प्रज्ज्वलित की। उन्होंने इस बात को किंचित मात्र भी नहीं सोचा कि शत्रु ऐसे अवसर से लाभ उठा सकते हैं। बैरम खां ने तुरन्त ही परिस्थति को समझकर जलती हुई अग्नि के प्रकाश में नदी को पार करने का आदेश दिया। "वह अब अप्रत्यक्ष रूप से ही अफगानों के खेमों की ओर बढ़ने लगा तथा अग्नि के चारों ओर झुण्ड लगाए बैठे हुए सैनिकों को तीरों से बेधना आरम्भ कर दिया जिससे वह लोग अस्त-व्यस्त हो गए। अफगानों ने (जो बीहड़ त्रुटि करने के लिए सुप्रसिद्ध थे) अग्नि को बुझाने के स्थान पर, जिसके कारण वे अपने शत्रुओं को नहीं देख सकते थे तथा शत्रु उन्हें भली भाँति देख सकते थे, उसमें और काष्ठ डाल दिया; तथा बैरम खां की सम्पूर्ण सेना ने नदी को पार करके उन पर चारों ओर से आक्रमण कर दिया और उनकी सैनिक शक्ति को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अफगानों ने इस अवसर पर अपने सभी हाथी, सामान तथा बहुत से घोड़े खो दिए"।[1]

उस पराजय ने अफगानों के साहस को पंजाब तथा सरहिन्द में तोड़ दिया और वे अव्यवस्थित दशा में इधर उधर बिखर गए। सिकंदर उज़बेग आगे बढ़ा परंतु दिल्ली से आए हुए तार-तार खाँ, हैबत खां तथा नसीब मुबारकखां व अन्य सेना नायकों के अधीन अफगानों ने उसका सामना किया। इस समय दिल्ली के प्रशासक सिकन्दर सूर को और दिशाओं में भी युद्धों का संचालन करना पड़ा; दक्षिण-पूर्व में उसे हेमू से युद्ध करना था तथा पंजाब की सीमा पर उसे हुमायूँ के आगमन को रोकना था। अतः सिकन्दर सूर ने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित किया। एक भाग हेमू और अदली के विरुद्ध सक्रिय रहा तथा दूसरी सेना, जिसमें ३०,००० योद्धा थे तार तार खां के नेतृत्व में........ से सर्हिंद को चल पड़ी।[2]

१—फिरिश्ता : ब्रिग्स : जिल्द २ पृ० १८४-१९० ।

२—बयाजीद लिखता है कि जब हुमायूँ को मालूम हुआ कि तार तार खां कशी पंजाब में ३०,००० अश्वारोहियों के साथ पंजाब पर चढ़ आया है तो उसने बैरम खां, इसकन्दर खां कज्जक, मिर्जा खिज़ू खां हजारा, लाल खां बदाखशी, हैदर मुहम्मद अख्तर बेगी, मिराक कोलम्बी तथा खालिक बर्दी को लाहौर से भेजा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मछीवारा का द्वितीय युद्ध—

अफगानों की इतनी बड़ी सेना के आगे बढ़ने का समाचार पाकर मुगल भयभीत हो गए। हुमायूँ अपने को सुरक्षित रखने के लिए स्वयं जालन्धर वापस चला गया।[1] बैरम खां ने इस प्रकार पीछे हटने तथा सिकन्दर उजबेग के भाग जाने का विरोध किया। उसने मुगल सेनापतियों को सुसंगठित होकर आगे बढ़ने का आदेश दिया। खिज़ खां, तार्दी बेग तथा सिकन्दर सभी से आज्ञा पालन करने को कहा गया। मुगल सेना ने पुनः एकत्रित होकर नदी को पार किया तथा रात्रि में अफगानों से युद्ध किया। अफगान घबड़ा गए और रणक्षेत्र छोड़कर भागने पर बाध्य हो गए। मुगलों ने सरहिन्द का प्रान्त प्राप्त कर लिया तथा पंजाब उनके लिए सुरक्षित हो गया। हिसार फिरोजा तथा दिल्ली के कुछ संरक्षित राज्य भी मुगलों के अधिकार में आ गए।

सरहिन्द का युद्ध—

सिकन्दर सूर ने एक बार फिर शक्ति संतुलित की तथा मुगलों का विरोध करने का निश्चय किया। उसने ८०,००० अश्वारोहियों की सेना एकत्रित की तथा मुगलों का जिनकी संख्या ७ या ८ सौ थी, स्वयं विरोध करने चल पड़ा। बैरमखां ने हुमायूं के पास उसकी सहायतार्थ स्वयं चले आने के लिए एक अतिआवश्यक संदेश भेजा—अन्यथा पीछे हटना अनिवार्य था। मुगल बादशाह २८ मई १५५५ को सरहिन्द पहुँचा गया और मुगल सेना की संख्या बढ़कर जौहर के अनुसार ५,००० तथा बयाजीद के अनुसार १०,००० हो गई।

दोनों पक्ष अपनी स्थितियों को सुदृढ़ करने में लग गए। डेढ़ मास तक इन लोगों ने तैयारियां की।[2] दूसरी शाबान ९६२ हिजरी अर्थात् बृहस्पतिवार २२ जून सन् १५५५ को युद्ध हुआ। अफगान जो अपने मस्त हाथियों पर आश्रित थे "पर्याप्त वीरता तथा साहस के साथ लड़े"। ईरानियों के घोड़े भाग खड़े हुए। मुगल लोग अफगानों के भयानक आक्रमण के समक्ष न टिक सकने, पर भागने ही वाले थे कि हुमायूं की युद्ध नीति के परिवर्तन ने परिस्थिति बदल दी। सिकन्दर की सेना तितर बितर हो गई तथा वह स्वयं शिवालिक पर्वत की ओर भाग गया। मुगलों के हाथ अफगानों का बहुत सा सामान

१—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूँ पृ०—३४५।

२—अबुलफजल—अकबरनामा—जिल्द-१ पृ० ६३१—लेखक के अनुसार हुमायूं ने अन्तिम निर्णयात्मक युद्ध होने से ४० दिन पहले से चातुर्यमय लड़ाई लड़ी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आया। बड़ी संख्या में अफगानियों का बध कर दिया गया। बहुत बड़ी संख्या में होने पर भी वे छिन्न भिन्न कर दिए गए। वे पंजाब के बाहर भगा दिए गए।

कुछ इतिहासज्ञों ने सरहिन्द के युद्ध को निर्णयात्मक युद्ध माना है; तथा एक इतिहासकार के शब्दों में "मुगलों की सफलता मुख्यतः सुयोग्य नेतृत्व, उत्तम सैनिक चातुर्य्य तथा गति की तीव्रता के कारण थी।[1] बैरम खां, तार्दी बेग, अब्दुल्ला खां उजबेग तथा अबुलमाली की भी बड़ी प्रशंसा की गई है। परंतु इन सेनानायकों के बाद के कारनामें इस यश को मान्य रखने में सहायता नहीं देते। दिल्ली तथा पानीपत के अगले दो अत्यन्त निर्णयात्मक युद्धों में बैरम खां ने कोई भाग नहीं लिया। तार्दी बेग के ऊपर दिल्ली को बड़ी शीघ्रता तथा उदंडता पूर्वक खाली करने का लांछन लगाया गया है। अबुलमाली ने सम्भल के शादी खां के विरुद्ध बहुत ही कम उत्साह से कार्यवाही की। मुगल सेनापतियों के एक प्रकार के कार्यकलाप थे जिनके विषय में कहा जाता है कि उन्होंने सरहिन्द के युद्ध में अपनी योग्यता का बड़ा ही सुंदर परिचय दिया। फिर भी मुगलों की विजय हुई तथा अफगानों के पैर उखड़ गए। अफगानों की पराजय का कारण स्वयं उनकी दुर्बलता थी। अफगानों के दो मुख्य पक्षों में, जिनमें से एक सिकन्दर सूर के तथा शेष हेमू और अदली के नेतृत्व में था, एकता न होना ही उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता थी। स्वभावतः जब सरहिन्द के युद्ध में सिकन्दर ने अपने सर्वस्व की बाजी लगा दी थी, दिल्ली अरक्षित पड़ी रही तथा सिकन्दर स्वयं पराजित होते ही भाग गया। परंतु इसके बाद का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि अफगान सेना का अधिक भाग सिकंदर सूर के नेतृत्व में पुनः सक्रिय हो गया, यद्यपि हुमायूं दिल्ली में चारों ओर खाईयों से घिर कर सुरक्षित रहा, फिर भी उसे सिकंदर सूर का प्राणघातक-भय बना रहा। जनवरी १५५६ ई० में हुमायूं की मृत्यु के समय अफगानों ने पुनः मुगलों को परेशान करना प्रारंभ कर दिया यद्यपि उनका नेतृत्व बैरम खां जैसा व्यक्ति कर रहा था। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि कही सिकन्दर, हेमू तथा अदली परस्पर मिल जाते तो मुगल लोग भारतवर्ष में अपनी सत्ता पुनः स्थापित करने में कभी भी सफल न हो पाते।

यह भी कहना अतिशयोक्ति ही होगा कि सरहिन्द के युद्ध के पश्चात "मुगल हिन्दुस्तान में पुनः स्थापित हो गए।" मुगल शक्ति की पुनः स्थापना केवल क्षणिक थी। हुमायूं की मृत्यु से पूर्व उस की दयनीय दशा देखने से ज्ञात

१—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं—पृ० ३५०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है कि उसका दूसरी बार का शासन कितना अदृढ़ व अव्यवस्थित था। मुगल शासक का दूसरी बार का सत्तारोहण हेमू के एक ही प्रहार से ढह गया। यदि बैरम खां अपनी सतर्कता तथा राजनीतिज्ञता से अन्य मुगल सेनापतियों को यह निश्चयात्मक राजकीय आज्ञा न देता कि वह सब भारत में हर प्रकार से ठहरेंगे तथा तार्दीबेग को कत्ल न करवा देता तो भारत में सम्भवतः मुगलों की सत्ता का अंत हो जाता।

यह भी कहना अधिक सत्य न होगा कि "भविष्य के गर्भ में बड़ी बड़ी वस्तुओं का जन्म निहित था। जैसे राजनैतिक एकता, शासन-समानता, राजनीति में नवीनीकरण तथा जाति और धर्म के बन्धनों से विभाजित जनता पर साहसिक प्रशासन का प्रयोग। अंतिम अफगान शासन पद्धति की गड़बड़ी के पश्चात हुमायूँ के उत्तराधिकारी के निर्माणशील शासन का युग आता है।" अंतिम वाक्य से स्पष्ट ज्ञात होता है कि पानीपत के द्वितीय युद्ध के विषय में तो उसके निर्णायात्मक रूप का विश्वास किया जा सकता है। परन्तु सरहिन्द के युद्ध के परिणामों को इतना निश्चयात्मक तथा निर्णयात्मक रूप नहीं दिया जा सकता। अल्प समय में शेरशाह के सुधारों को कार्यान्वित रूप में देखते हुए यह कहना कि शासन-प्रणाली के सुधारों को मूल रूप से चालू करने में हुमायूँ के उत्तराधिकारी का ही हाथ था, यह अब भी विवादास्पद विषय है। जहाँ तक हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की भावना के प्रचार का संबंध है शेरशाह तथा हेमू का स्थान समानरूप से ही उच्च है। हेमू के नेतृत्व में मुगलों का—जिन्हें फिरिश्ता ने विदेशी लिखा है—विरोध करने के लिए हिन्दू तथा अफगान की एकता का इतना ज्वलन्त उदाहरण और कहाँ मिल सकता। इसके विपरीत हुमायूँ के उत्तराधिकारी द्वारा धार्मिक स्वतंत्रता की विश्व व्यापकता तथा उदारता व सहिष्णुता के प्रमाणित होने पर भी इसकी यथार्थता में संदेह नहीं कि उसकी शासन कला, निर्माण तथा अन्य वस्तुओं में फारसीकरण की प्रणाली को अपनाने की नीति ने हिन्दू-मुसलमान में पारस्परिक घृणा की भावना का संचार कर दिया और ऐसी खाई पैदा कर दी जो गत ४०० वर्षों में तीव्रतर ही होती रही। हेमू द्वारा अपनायी गई नीति हुमायूँ के उत्तराधिकारी की नीति से सर्वथा भिन्न थी। उसका अल्पकालीन शासन हिन्दू मुस्लिम ऐक्य तथा मुगलों से जिन्हें विदेशी कहा जाता था, मुकाबला करने में अत्यधिक सहयोग दिलाने के कारण आज भी सम्मान की दृष्टि से देखा जा सकता है।

सरहिन्द के युद्ध से दिल्ली तथा आगरा की ओर अग्रसर होने के मार्ग खुल गए। हुमायूँ ने सिकन्दर उज़्बेग को दिल्ली की परिस्थिति का निरीक्षण करने भेजा। यह निश्चय करना था कि अफगानों की दिल्ली तथा उसके निकटवर्ती स्थानों में पुनः शक्ति संगठन की कोई संभावना तो न थी। परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आशाओं के विपरीत सिकन्दर उज़्बेग ने यह सूचित किया कि विरोध की उस समय भी पूर्ण आशंका थी, अतएव हुमायूँ को शीघ्र ही दिल्ली के रिक्त सिंहासन पर अधिकार कर लेना चाहिए। मुगल सम्राट शीघ्र ही अपनी सेना को दिल्ली की ओर संचालित करके स्वयं २३ जुलाई १५५५ दिन मंगलवार को दिल्ली पहुँच गया। अबुल फज़ल के अनुसार यह घटना १ रमजान ९६२ (शनिवार, २० जुलाई १५५५) को हुई। कहा जाता है कि हुमायूँ समाना से चल कर सलीमगढ़ पहुँचा तथा उसी माह की चौथी तारीख को दिल्ली में प्रवेश कर के सिंहासनारूढ़ हुआ।[1]

अबुल फज़ल के अनुसार अबुल माली पंजाब का प्रशासक नियुक्त हुआ था। परन्तु जौहर कहता है "......................प्रान्त का शासन उसने अपने हाथ में ले लिया। तथा इस प्रकार सम्राट द्वारा नियुक्त किए कए अधिकारियों को अधीकृत कर दिया।'[2] हुमायूँ उसका बड़ा आदर करता था अतः उसने इसकी ओर कोई ध्यान न दिया। इसके अतिरिक्त उसको, सिकन्दर अफगान से युद्ध करते रहने का उत्तरदायी-पूर्ण कार्यभार तथा दिल्ली एवं लाहौर के बीच यातायात बनाए रखने का कार्य सौंपा गया।

हुमायूँ की मृत्यु—

हुमायूं की मृत्यु की वास्तविक तिथि के सम्बन्ध में तत्कालीन विद्वानों में बड़ा मतभेद है जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जायेगा।[3]

लेखक	घटना काल	मृत्यु की तिथि
जौहर	—	११वीं रबी I ९६३ यह केवल स्टुअर्ट के अनुवाद में प्राप्त है। किसी हस्तलिपि में इसका वर्णन नहीं मिलता।
बयाजीद	शुक्रवार सायंकाल रबी	९६३ के अन्त में
सीदी अली रईस	शुक्रवार रबी-उल-अव्वल	सोमवार रबी-उल-अव्वल
अबुलफजल	शुक्रवार-११वीं रबी उल-अव्वल	रविवार १३वीं रबी-उल-अव्वल
निज़ामुद्दीन	७वीं रबी-उल-अव्वल	१५वीं रबी उल-अव्वल
अल बदाऊनी	७वीं रबी-उल-अव्वल	१५वीं रबी-उल-अव्वल

१—अबुलफज्ल : अकबरनामा, जिल्द १ पृ० ६३४।
२—जौहर : हुमायूँ के संस्मरण—पृ० १७१।
३—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं—पृ० ३६५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लेखक	घटना काल	मृत्यु की तिथि
अहमद यादगार	७वीं रबी-उल-अव्वल	११वीं रबी-उल-अव्वल
फिरिश्ता	७वीं रबी (सूर्यास्त के समय)	११वीं रबी उल-अव्वल
अमल साहिब	११वीं रबी उल-अव्वल (सायंकाल)	१३वीं रबी-उल-अव्वल
बादशाह नामा	—	रविवार, १३वीं रबी-उल-अव्वल
नफ़ैसुल-माएसिर	शुक्रवार १६वी रबी-उल-अव्वल	रविवार, १३वीं रबी-उल-अव्वल

सबसे अधिक विश्वस्त लेखकों के अनुसार हुमायूं की मृत्यु की तिथि १३ वीं रबी उल-अव्वल अर्थात् रविवार २६ जनवरी १५५६ होती है तथा घटना का दिन शुक्रवार होता है।[1]

घटना के पूर्व सम्राट की वास्तविक दशा के सम्बन्ध में अकबर नामा में ब्योरे वार विवरण मिलता है। यह सर्व सम्मति से मान्य है कि हुंमायूं को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास था। जब अकबर ने पंजाब जाने की आज्ञा प्राप्त की, उस समय हुंमायूं ने अपने स्वर्ग जाने की बात कही थी।[2]

यद्यपि यह बात मुगल सम्राट के लिए उपयुक्त न थी तथा शाहजादे को चिन्तित कर देने वाली थी, विशेषकर उस समय जब कि समस्त मुगल परिवार की महिलाएँ काबुल में ही भारत आने की प्रतीक्षा कर रही थीं, फिर भी हुमायूँ अपनी भावनाओं को व्यक्त करने से अपने को रोक न सका। वह अक्सर दिल्ली तथा उसके आस-पास के प्राचीन उद्यानों तथा समाधियों में भ्रमण किया करता था तथा उसका मस्तिष्क सदैव शीघ्र ही परलोक जाने के विचारों से भरा रहता था।

१—अबुल-फजल : अकबरनामा : पृ० ६५२-६५४-६५५ जिल्द—१ अंग्रेजी में बेवरीज द्वारा अनुवाद—साथ में अब्दुल हमीद का बादशाहनामा : बिबलोथिका—इंडिका-संस्करण पृ० ६३।

२—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुंमायूं : पृ० ५४।

"बयाजीद के वर्णन से प्रतीत होता है कि हुंमायूं ने इस लोक के बारे में बहुत संकुचित भावना बना ली थी, तथा वह जनसमुदाय की कृतघ्नता व दुष्टता से दुखित था। उसने इसका प्रण कर लिया था कि यदि वह अपने पैत्रिक राज्य को पुनः प्राप्त कर सका तो संसार से विरक्त हो जाएगा, तथा अपने पुत्र को सब कार्य भार सौंप देगा व स्वयं अपने शेष जीवन के दिनों को धार्मिक तथा विद्वान पुरुषों के मध्य में बिताएगा"।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेवरिज ने गुलबदन के हुमायूँनामा की अपनी भूमिका[१] में यह वर्णन किया है कि किस प्रकार हुमायूँ की अन्तिम घड़ियां मनोरंजक क्रिया कलापों में व्यतीत हुई। उसके पास उस समय पुराने मित्र देखे गए, जो कि उसी समय मक्का से वापस आए थे तथा दोनों हाजी भाईयों का संदेश लाये थे। मुगलों के पहले निवास-स्थान काबुल से आए हुए पत्र पढ़े गए। हुमायूँ शेर मंडल (शेरशाह द्वारा निर्मित भवन), जिसे वह अपने पुस्तकालय के रूप में प्रयोग करता था, की छत पर गया था तथा उस दिन उसने नीचे एकत्रित जनता को अपना दर्शन दिया था तदुपरान्त वेवरिज के कथनानुसार हुमायूँ संभवतः तुर्की अतिथि को विदाई देने व स्वागत के लिए किसी शुभ घड़ी को निश्चित करने व मंगल नक्षत्र के उदय होने को देखने के लिए व्यस्त रहा।

हुमायूँ की प्राण-घातक घटना की तिथि, शुक्रवार, का समर्थन अबुल फजल द्वारा तथा तुर्की ऐडमिरल कातिबे-रूमी, सीदी अली रईस के प्रमाणिक वर्णन से होता है। क्योंकि वह उस समय दिल्ली में ही था यद्यपि उसने प्रकट रूप से यह नहीं कहा, फिर भी संभवतः वह अन्तिम दिवस के दरबार में उपस्थित था। उसके शब्द यह है[२] :—

नौ सेना अध्यक्ष—एडमिरल की "प्रस्थान करने की सब तैयारियां हो चुकी थी हुमायूँ ने शुक्रवार की संध्या को दरबार किया था। अपने विश्राम तथा विलास कक्ष को छोड़ते ही जब वह जीने के नीचे उतर रहा था उस समय मुअज्जन ने **अजान** दी। उसकी आदत थी कि जब कभी वह अजान सुनता था परमात्मा के सामने कृतज्ञता प्रकट करने के लिए घुटने टेक देता था। ऐसी ही उसने इस समय भी किया परन्तु दुर्भाग्य से कई सीढ़ी नीचे गिर पड़ा तथा उसके शीश तथा भुजा में पर्याप्त चोट पहुँची।" वास्तव में यह किवदन्ती सत्य ही है कि 'भाग्य का लिखा हो कर ही रहेगा।' हुमायूँ की इस सहसा दुर्घटना से ही राजमहल में गड़बड़ी छा गई, परन्तु दो दिवस तक यह रहस्य (दुर्घटना का) गुप्त रक्खा गया। जनता में यह घोषित किया गया था कि सम्राट स्वस्थ है तथा निर्धनों को भिक्षा दान दिया गया। तीसरे दिन अर्थात सोमवार को उसकी (हुमायूँ) अपने आघातों के कारण मृत्यु हो गई।

वेवरिज ने अबुल फजल के वर्णन पर टीका करते हुए चगताई खाँ को तुर्की ऐडमिरल (नौ सेना नायक) लिखा है क्योंकि हुमायूँ अथवा अकबर के

१—गुलबदन : हुमायूँ नामा : वेवरिज द्वारा अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका पृ० ५४।

२—लूजक : वैम्ब्री का अनुवाद : १८९९ : पृ० ५५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय में कोई भी मुगल सेनापति इस नाम[१] का नहीं हुआ था। बेवरिज के अनुसार सीदी अली ने सम्भवतः चग़ताई खाँ नामक उपनाम अपनी 'चग़तई' भाषा में पारंगत होने के कारण पाया होगा।[२] वह उसी समय गुजरात से आया था तथा शुक्रवार को दरबार में उपस्थित हुआ था, क्योंकि हुमायूँ उसी दिन आम स्वागत तथा भेंट करता था।[३] इन प्रमाणों के बाद इतना निःसन्देह स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूँ की मृत्यु, दुर्घटना के दो दिन उपरान्त अर्थात रविवार २६ जनवरी सन १५५६ ई० को हुई। दुर्घटना की तिथि भी २४ जनवरी निश्चित हो चुकी है। बेवरिज के शब्दों में "जब तक ज्योतिष द्वारा यह सिद्ध न कर दिया जाय कि मंगल का उदय शुक्रवार २४ जनवरी १५५६ को नहीं हुआ तब तक मेरी समझ में हम इसी दिवस को दुर्घटना का दिवस मान सकते हैं।" इस तिथि की पुष्टि पुनः सीदी अली के इस कथन से भी होती है कि उसने लाहौर के लिए रबी-उल-अव्वल के मध्य के वृहस्पतिवार को प्रस्थान किया। उसने मृत्यु के बाद तक प्रस्थान न किया तथा वृहस्पतिवार १७ वीं रवि-उल-अव्वल को पड़ी होगी। बैम्ब्रीज के अनुवाद के अनुसार दियेज से विपरीत, ऐडमिरल का लाहौर में वृहस्पतिवार को आगमन हुआ था परन्तु यह स्पष्ट रूप से असंगत है।[४]

दुर्घटना का स्थान तथा गिरने की विधि—

यह एक अनोखी बात थी कि हुमायूं की मृत्यु शेरशाह द्वारा निर्मित भवन में हुई। सैयिद अहमद ने अपनी "असर सनादीद" में इस इमारत का वर्णन किया है।[५] "यह लाल पत्थर की एक अष्ट-कोण इमारत है तथा इसमें दो मंजिले है। परन्तु अब इसका प्रथम भाग ठोस है अर्थात् उसमें कमरे नहीं है। इसमें अन्दरुनी जीने हैं जो दूसरी मंजिल को जाते हैं जो एक अष्टकोण कमरा है जिसमें ताक बने हुए है जिन्हें पुस्तकें रखने के प्रयोग में लाया जाता था। इस स्थान से दो अलग अलग जीने छत तक जाते है जहाँ आठ खम्भों पर आधारित एक छोटी खुली छतरी है। इनमें से पथ-प्रदर्शकों द्वारा एक जीना वह बतलाया जाता है जिससे हुमायूं गिरा था। जीने में एक घुमाव है तथा सीढ़ियां १ फीट ऊँचे ढालू एंव संकरे कड़े पत्थर (ग्रेनाइट) के बने हुए हैं। इतना बतला देना चाहिए कि जीने छत ही से प्रारम्भ होते हैं अतः हुमायूं

१—सीदी अली रईज।
२—बैम्ब्रीज-तुर्की प्रकाशन की भूमिका : पृ० १७।
३—अबुल फजल : अकबरनामा—अध्याय—६२ बेवरीज द्वारा अंग्रेजी अनुवाद पृ० सं० ६५२-५५। जिल्द —१।
४—अबुल फजल : अकबरनामा—जिल्द—१ पृ० ६५२-५५।
५—"गैरिन दी तेजी" का अनुवाद भी देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उससे पृथक गिरने के बजाए छत ही के बीच गिरा था। निश्चित ही वह मुंडेर पर नहीं गिरा। रोजर्स के अनुसार 'जीने छतरी के दोनों तरफ उस स्थान पर आते थे जो छतरी तथा मुंडेर के मध्य पड़ता था।''

वास्तव में इस दुर्घटना के समय क्या हुआ यह नहीं जाना जा सकता परन्तु इसका सबसे अधिक विश्वस्त वर्णन अकबरनामा के रचयिता के इन शब्दों में पाया जाता है : "............दिन के अन्त में वह पुस्तकालय की छत पर आया जो हाल में ही पुस्तकों से भर दिया गया था तथा वहाँ पर उपस्थित दरबारियों को, कार्निश अर्थात् पूजा व आर्शीवाद देने का मुख्य संदेश देने के पश्चात् पर्याप्त समय तक वह धार्मिक (स्थान) मक्का, गुजरात तथा काबुल के सम्बन्ध में प्रश्न करता रहा।

"............सन्ध्या के आरम्भ में उसने नीचे जाने की इच्छा प्रकट की तथा जब वह दूसरे जीने पर था एक अजान पढ़ने वाले (मुकरी) ने जिसका नाम मिसकिन (दुष्ट) था, नमाज के लिए असमय ही अजान दी। सम्राट ने उस आवाज के प्रति आदर भाव दिखाने के हेतु जहाँ वह था वहीं बैठ जाना चाहा। जीने की सीढ़ियां (दरज़ात) तेज थी तथा पत्थर फिसलने वाले (लघजिन्दा) थे, उसका पैर बैठते समय पोशाक के हिस्से में (दार दामन-ए-पौस्तिन) फँस गया और उसका डंडा फिसल गया। उसका पैर लड़खड़ा गया तथा वह सिर के बल गिर पड़ा। उसकी दाहिनी कनपटी पर कड़ा आघात पहुँचा इससे दाहिने कान के लहू के कुछ बिन्दु गिर पड़े। चूँकि उसका हृदय रहस्यों से परिचित था और इसलिए कि वह संसार के लिए सुख प्रदान कर सके तथा सांसारिक आवश्यकीय प्रबन्ध कर सके।"[1] इस कारण उसने तुरन्त ही नजर शेख कुली के हाथ अपनी कुशलता का एक शुभ संदेश भाग्य की उज्जवल ज्वलन्त रेखाओं को केन्द्रित करने वाले के पास भेजा।

मृत्यु का गोपनः—

यद्यपि हुमायूं की मृत्यु आकस्मिक थी फिर भी सम्बन्धित व्यक्ति हुमायूं को, पर्याप्त समय से उसका पूर्वाभास था। परन्तु कर्मचारियों को एक आकस्मिक धक्का लगा था बैरम खां और अकबर की अनुपस्थिति एवं मुगल महिलाओं के काबुल में होने के कारण महल में कोलाहल मच गया। विषाद को घटाने के हेतु दुर्घटना का समाचार दो दिन तक गुप्त रक्खा गया। जिस समय हुमायूं निश्चेष्ठ अवस्था में पड़ा था तथा यह निश्चित हो गया कि उसका अन्त निकट है, शेख नजर कुली अथवा जोली द्वारा एक फर्मान कालानौर में अकबर के पास

१—अबुल फजल : अकबरनामा : पृ० ६५५-५७ : अध्याय ६२
पाद-टिप्पणी : बिबलियाथ—पृ० ३६३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भेजा गया जिसमें यह सूचित किया गया कि सम्राट हुमायू एक दुर्घटना का शिकार हो गया था परन्तु वह स्वस्थ्य हो रहा था तथा अब चिन्ता की कोई बात नहीं थी। फर्मान इस प्रकार था:—[1]

"उस दिन मैं अपनी मसजिद की छत से उतरा। बीच जीने पर (बा-मियाँ-जीना) ही था कि मैंने अजान सुनी, तथा आदर की भावना से बैठ गया। जब अजान समाप्त हुई मैं उठा। परन्तु मेरे बेत की नोक मेरे कोट (जामा) की निचले भाग में फँस गई। मैं फिसल गया तथा गिर पड़ा। जीने के कोने (गोशा) से मेरे कान का निचला भाग टकरा गया तथा लहू के कई कतरे मेरे कान के निचले भाग (बंगोश) से निकल पड़े। कुछ समय तक मैं मूर्छित रहा। जब मुझे चेतना आई तो मैं दौलत खाना (शाही निवास स्थान) में चला गया। अब सब ठीक है, मेरे लिए चिन्तित मत होना।"

इसके उपरान्त तुरन्त ही तीन पत्र प्राण-लेवा दुर्घटना तथा उसकी मृत्यु की सूचना लेने के लिए इस क्रम से भेजे गए।

१—एक द्रुतगामी पत्रवाहक बैरम खां को सम्राट के जीने से गिरने की दुर्घटना की सूचना देने के लिए भेजा गया। उस समय मुगल सेना हरियाना में पड़ी हुई थी।

२—दूसरी सूचना शेख कुली के हाथ कालानौर भेजी गई।

३—तीसरी सूचना देर से भेजी गई जिसमें हुमायूं कि मृत्यु का दुखद समाचार भेजा गया था।

जब दुर्घटना की सूचना ही दो दिन तक गुप्त रखी गई थी तब मृत्यु के समाचार का, जैसा कि अकबरनामा के रचयिता के निम्नाँकित वर्णन से स्पष्ट होगा, जनता से १७ दिन तक गुप्त रखा जाना अनिवार्य था।

"समर्थकों ने, जो इस घटना के समय उपस्थित थे, इस भयानक घटना को गुप्त रखने का (मिफरमुदन्द) प्रयास किया तथा ऐसी हृदय-विदारक दुर्घटना का मसनद के उत्तराधिकारी को सूचना भेजने और मुख्य-मुख्य पदाधि-कारियों को जो राज्य के विभिन्न भागों में थे, एकत्रित करने का प्रबंध किया। अत्यधिक बुद्धिमता के साथ इस प्राण घातक घटना को उन लोगों ने १७ दिन तक जनता से गुप्त रक्खा।"[1,2]

१—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायू तथा कथित फर्मान एक राजनैतिक चाल थी, जिसको हुमायूं के समीप कूटनीतिज्ञों ने उसकी रूग्ण-शय्या के निकट गढ़ा था, व उसका तात्पर्य जनता को इसका विश्वास दिलाना था कि बाद-शाह के जीवन को कोई भय नहीं था। परन्तु वास्तव में हुमायूं की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी, और वह रविवार २६ जनवरी १५५६ को सायंकाल के समय परलोक सिधार गया था। पृ० ३६४-३६५।

२—अबुल फजल : अकबरनामा : पृ० ६५८। जिल्द—१.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुमायूं की मृत्यु ने भारत के इतिहास में निश्चय ही एक संकटकालीन परिस्थिति उत्पन्न कर दी। मुगल साम्राज्य की पुनः स्थापना प्रायः अस्थाई तथा अदृढ़ थी। शासन की बागडोर संभालने के लिए अकबर अल्पव्यस्क ही था। बैरम खां को अपनी प्रभुता दिखाने का अवसर भविष्य में मिलना था। अफगान अशान्त थे तथा तब तक अफगान संघ को नेता हेमू आगरा तथा दिल्ली के नगरों[1] के द्वार पर रणभेरी बजा रहा था।

जनता को और सान्त्वना देने के लिए एक व्यक्ति को हुमायूं की भांति वस्त्र पहनाये गए। वह जनता के समक्ष लाया गया। एक तुर्की ऐडमिरल सीदी अली रईस ने वेष परिवर्तन कृति में सक्रिय सहयोग दिया तथा रोगी के स्वस्थ होने की असत्य सूचना के साथ लाहौर भेज दिया गया।[2] अबुल फजल के शब्दों में:—

"जब दुखद घटना की सूचना ज्ञात हुई तो जैसा कि ऐसे संकट काल में स्वाभाविक ही है बड़ी विपदा तथा उपद्रव खड़े हो गए। अधिकारियों ने जनता के हृदयों को सान्त्वना देने व उनमें मुगल सत्ता के प्रति विश्वास बनाये रखने का प्रयास किया और ऐसे दुखद काल में मित्र व शत्रु के लिए जो आवश्यक था किया। उन्होंने भरसक इस दुखद अभाव को पूरा करने तथा टूटी हुई राज श्रृंखला में जोड़ लगाने का प्रयत्न किया"।[3]

हेमू तथा हुमायूं की मृत्यु—

एक युक्ति संगत प्रश्न यह उठता है कि प्राण-लेवा दुर्घटना तथा हुमायूं की मृत्यु के समय हेमू कहां था तथा उसके सक्रिय होने का हुमायूं की मृत्यु के पश्चात कोलाहल पर क्या प्रभाव पड़ा? अनेक इतिहासकारों के अनुसार हेमू को अदली द्वारा हुमायूं का जो पुनः मुगल साम्राज्य स्थापित करने आया था विरोध करने की आज्ञा मिली थी। जिस समय सिकन्दर सूर उत्तर-पूर्व से मुगलों को इस प्रकार आतंकित किए हुए था कि मृत्यु के समय में भी उसका उत्तराधिकारी अकबर तथा बैरम खां राजधानी से दूर सिकन्दर के विरुद्ध डेरा डाले हुए थे उस समय हेमू टिड्डीदल की भांति अपनी बृहत सेना तथा पर्वत सरीखे ऊँचे व लड़ाकू हाथियों के संग्रह करने में संलग्न था। यद्यपि सभी

१—विन्सेन्ट स्मिथ : अकबर : पृ० २९।
"........जब वह (हुमायूं) जनवरी १५५६ ई० में प्राण-लेवा दुर्घटना में ग्रस्त हुआ तो हेमू अदिली की ओर से रणक्षेत्र में उपस्थित था उसका ध्येय अकबर को अपने पिता के राज्य को पुनः प्राप्त करने से रोकने का था।"

२—वही : पृ० ३०।

३—अबुल फजल : अकबरनामा : पृ० ६५९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समकालीन इतिहासों में हेमू की युद्ध की तैयारी का बड़ा विशद वर्णन है, परन्तु लगभग सभी इस पर चुप हैं कि विशद दुर्घटना के समय वह कहां था व क्या कर रहा था।

अबुल फजल द्वारा किये गए निम्नलिखित वर्णन से संकट-कालीन परिस्थिति पर प्रकाश पड़ता है :—

"भली प्रकार धैर्य बँधाकर तथा परस्पर बधाई देकर राजकीय कर्मचारी, जो दिल्ली में एकत्रित हुए थे, अपने अपने स्थानों को व्यथित हृदयों को सान्तवना देने के लिए तुरन्त चल दिए। तारदी बेग ने जो उस समय उनकी राय के अनुसार नगर की परिस्थिति संभालने के लिए दिल्ली में ही था, गुलाम अली शासंघस्त तथा अन्य विश्वसनीय कर्मचारियों के हाथ संसार संरक्षक न्यायालय भेजे तथा स्वामि भक्ति एवं आज्ञाकारिता की घोषणा की। कामरान का पुत्र अबुल कासिम भी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए भेजा"।[1]

उपर्युक्त वर्ताव से यह स्पष्ट है कि अधिकारीगण का हृदय आतंकित था तथा वह शीघ्रता से पुनः स्थापित मुगल साम्राज्य को आपत्ति में समझते थे। यह सोचना कठिन है कि वे पूर्णतः यह भूले हुए थे कि हेमू क्या कर रहा था ? कई वर्णनों से यह भी प्रमाणित होता है कि अदली भी दिल्ली के रिक्त सिंहासन को अफगानों के लिए पुनः प्राप्त करने को चिन्तित था। सिकन्दर पहले से ही शिवालिक की पहाड़ियों में परेशान था, तथा हेमू के लिए ग्वालियर, अलवर, कालपी, इटावा और आगरा के क्षेत्र खुले पड़े थे। इन स्थानों से सहायता प्राप्त किए बिना हेमू इतनी विशाल सेना के साथ कभी दिल्ली पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता था। आगरा, बयाना तथा कालपी में दुर्भिक्ष का प्रकोप था, तथा हेमू ने अनवरत रूप से सेना को गतिमान करने तथा सैनिकों, हाथियों और उनके रक्षकों को खिलाने का कार्य जारी रखा। अलवर में हाजी खां तथा सम्भल में शादी खां, जिन्होंने दिल्ली के युद्ध में भाग लिया हेमू के साथ कार्य कर रहे थे।

हुमायूं की मृत्यु, दिल्ली पर अधिकार तथा हेमू के सिंहासनारूढ़ होने का सुन्दर वर्णन समकालीन कवि भक्त मुदित ने "अन्य रसिक माल" में, जो राधावल्लभी सम्प्रदाय का ग्रन्थ है, इस प्रकार किया है :—[2]

'हुमायूं शाह जब गढ़ गिर मरो—हेमू राज कछुक दिन करो।
बहुरि अकबर को भयो राज—हेमू मारो बैठो राज।

१—अबुल फजल : अकबरनामा : पृ० ६५९।
२—भगवत मुदित कृत अनन्य रसिक माल : ३५० वर्ष पहले रचित : हस्तलिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, बाराणसी में सुरक्षित है। प्रकरण नवलदास की कथा—पृ० ४४-४७ तक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसका अर्थ यह हुआ कि जब हुमायू की अपने महल के ज़ीने से गिर जाने से मृत्यु हो गई तो हेमू ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया तथा कुछ समय तक शासन किया। यह विभिन्न वर्णन हेमू के सम्बन्ध में न तो एक मत ही है और न विशद रूप से लिखे गए हैं, परन्तु इतना तो विश्वास करना कठिन हैं कि पल मात्र में ही हेमू ने दिल्ली पर इतना भीषण आक्रमण करने के लिए इतनी विशाल सेना एकत्रित कर ली। वरन् यह सम्भव है कि जिस समय हुमायूँ के साथ यह दुर्घटना घटी हेमू अपनी अपार धनराशि, पूर्ण रूपेण तैयार तोपों तथा युद्धातुर हाथियों सहित आगरा के समीप ही था।[१] इससे दिल्ली में छाये आतंक का कारण स्पष्ट हो जाता है। दुर्घटना के पश्चात तुरन्त ही हेमू चुनार की ओर बढ़ गया तथा आगामी कुछ ही मासों में मुगलों से टक्कर लेने के लिए सशस्त्र सेना तैयार कर ली। इस परिणाम की पुष्टि हुमायूँ के शव-संस्कार सम्बन्धित विभिन्न वर्णनों से होती है।

देर से किया गया अन्तिम संस्कार—

मुगल सम्राट की मृत्यु को गुप्त रखने के लिए किए गए उपर्युक्त प्रयासों के अतिरिक्त हुमायुँ के शव को दिल्ली में दफनाने के सम्बन्ध में असफलता, एक बड़ा रहस्य बना है।[२] रैंगनी नितवाद की मासिर रहीमी के अनुसार जब "हेमू ने तारदी वेग को परास्त करके नगर पर अधिकार कर लिया" तो हुमायूँ के शव को दिल्ली से सरहिन्द ले जाया गया।[३]

बनर्जी द्वारा "हुमायूं बादशाह" नामक पुस्तक में यह कहा गया है कि हुमायूँ का शव कब्र से खोदकर सरहिन्द ले जाया गया, इस डर से कि हेमू उसे खुदवा देगा, बिल्कुल निराधार है। यदि शव गड़ा हुआ होता तो हेमू द्वारा उसकी दुर्गति होने की कोई संभावना न थी। सम्भवत: शव काफन (शव-पेटी) में ही सुरक्षित था। मकबरा न बनने के कारण तथा राजनैतिक अस्तव्यस्तता से उसे दफनाया न जा सका था। सरहिन्द ले जाने में यह तात्पर्य था कि यदि लौटकर दिल्ली न आ सके तो शव को कैसे दफनाते। संकटकालीन परिस्थिति का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन इसी से हो जाता है। खोये हुए सिंहासन को प्राप्त करके पुन: विपदा में पड़ने के कारण दिल्ली शीघ्र ही लौटने का मुगलों के लिए स्वप्न ही था।

१—डा० आर्शीवादि लाल : मुगल साम्राज्य : पृ० सं० : १३९

२—अबुल-फ़ज़ल : अकबरनामा : पृ० ६५२-६५५ जिल्द १ अध्याय ६२।

३—मुल्ला-अब्दुल-बाकी-नहावन्दी : माअसिर,ए-रहीमी :—अब्दुर-रहमान खान-खाना के संस्मरण : बिबलियोथिका इंडिका-अरबी तथा फारसी ग्रन्थमाला। शम्शुल-उलेमा मुहम्मद हिदायत हुसैन द्वारा संपादित। पृ० सं०—६५९ : जिल्द-१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

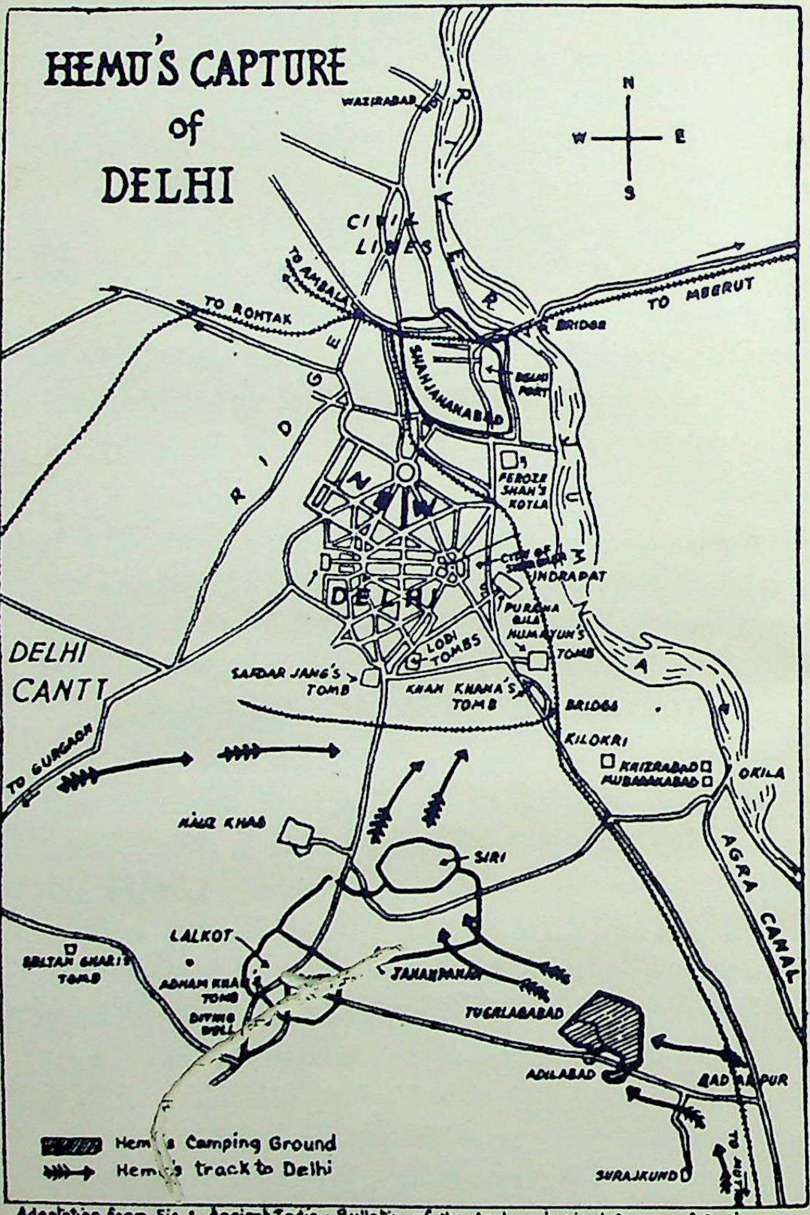

Adaptation from Fig.1 Ancient India: Bulletin of the Archaeological Survey of India. Number I — Jan 1946.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय—६

दिल्ली पर आक्रमण तथा सिंहासनारोहण

हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात तुरन्त ही मुगल-शिविर में आतंक छा गया। शुक्रवार रबी-उल अव्वल २ वाँ हिजरी ९६३ तदनुसार १४-२-१५५६ को कालानौर[1] में अकबर को सम्राट घोषित कर दिया गया। यह घोषणा ११ फरवरी ही को कर दी गई थी।[2] बैरम खाँ ने संरक्षक का कार्य किया तथा उसने इस बात का भरसक प्रयत्न किया कि अनमनस्क तथा अवज्ञा करनेवाले मुगल सेनापति अकबर ही के साथ रहें। कहा जाता है इन प्रमुख सेनापतियों में से शाह-आबू-उल-माली ने राज्य तिलक के अवसर पर किए जाने वाले दरबार में तुरन्त ही सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। यह समारोह सिंहासनारूढ़ होने के तीसरे दिन मनाया जाने वाला था। मुगल इटावा, आगरा तथा संभल से एक-एक करके निकाले जा रहे थे। हेमू की सेना बढ़ती चली आ रही थी। नियामतउल्ला इतिहासकार के कथनानुसार मुगल सैनिकों के एक दल ने, जिसने सिकन्दर खाँ उजबक तथा कबाड़ खाँ गंक के नेतृत्व में आगरा पर अधिकार पा चुके थे, अपने को हेमू की सेना के विरुद्ध असमर्थ पाकर दिल्ली वापिस भाग कर शरण ली। यहाँ उन्होंने पुनः तारदी बेग खाँ के साथ आकर अपने को संगठित कर लिया।

अबुल फजल के अनुसार भी इन प्रान्तों में नियुक्त किए गए मुगल अधिकारी दिल्ली में एकत्रित हुए। तारदी बेग खाँ ने इन विभिन्न टुकड़ियों को संगठित किया तथा युद्ध की तैयारियाँ की। उसने प्रत्येक मनुष्य को ऐसी भाषा से प्रोत्साहित किया कि उनकी हिम्मत बढ़ गई तथा अविश्वास भरे हृदयों को शान्ति मिली। अनेक उत्साही तथा वीर मनुष्य विभिन्न जिलों से वहाँ आ गए परन्तु कुछ विद्रोही अफगानों को शान्त करने में लगे रहने के कारण अली कुली शैबानी दिल्ली में अन्य शाही सेवकों से आकर न मिल सके।[3]

१—कालानौर : गुरदासपुर नगर से १५ मील पश्चिम की ओर पूर्वी पंजाब में स्थित है। इसमें ५००० निवासी रहते हैं। ईटों का एक साधारण पक्का चबूतरा, जिसकी लम्बाई १८ फीट, ऊँचाई ३ फीट है, उस स्थान का स्मारक है, जहाँ अकबर सिंहासनारूढ़ हुआ था।

२—अबुलफजल : अकबरनामा : जिल्द—१-पृ० ६५८।

३—अबुलफजल : अकबरनामा : पृ० ४६। जिल्द—२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्भल का शादी खां—

जिस समय कि कालानौर में अकबर के राज्य तिलक का कार्य क्रम चल रहा था और दिल्ली में आतंक छाया हुआ था, सम्भल [1] के शादी खां ने युद्ध की तैयारियाँ आरंभ कर दी एवं दिल्ली की ओर कूच कर दिया। अकबर ने सिंहासनारूढ़ होने वाले दिवस से ही "खान जमन" की उपाधि प्राप्त करने वाले अली कुली खाँ को, अदली[2] के एक अमीर शादी खाँ अफगान के विरुद्ध, युद्ध करने के लिए सम्भल की ओर भेजा। बदाऊनी के अनुसार जब कि खान जमन (अली कुली खां) अफ़गानो का सामना करने की तैयारियाँ करने में व्यस्त था, उसी समय दिल्ली आगरा तथा इटावा से यह सूचना मिली कि हेमू बड़ी शक्ति शाली सेना, हाथी तथा अदली से प्राप्त अपार धन राशि को लेकर मुगल आधीन भारत की सीमा पर स्थित सेना को हराता हुआ युद्ध करने की नियत से दिल्ली के समीप आ पहुँचा था। तब आगरा से इसकन्दर खाँ उजबेग, इटावा से क़ूजा खाँ, काल्पी से अब्दुल्ला खाँ उज़बेग, बियाना से हैदर मोहम्मद खाँ तथा सरहदी क्षेत्रों से अन्य सेनापति दिल्ली आ पहुँचे और तारदी बेग खाँ से मिल गए।[3] जिस समय यह सब जगहें हेमू द्वारा विजित की जा रही थी अली कुली खाँ के सिपाही शादी खां से झूझ रहे थे। उसको भी पीछे हटना "पड़ा, परन्तु यमुना के एक ही किनारे पर होने पर भी वह उनके तारदी बेग खाँ तथा अन्य मुगल सैनिकों के साथ हेमू का विरोध करने के ध्येय से साथ मिल न सका।"

अबुल फजल ने निम्नांकित पक्तियों में खान जमन द्वारा शादी खां तथा मुबारिज खां के प्रमुख अधिकारियों के साथ, जिनके अधिकार में सम्भल सरकार के कई परगने थे युद्ध का वर्णन किया है:—

"अली कुली खाँ, उसको (शादी खाँ को) कुचल डालने के लिए आगे बढ़ा। अपने से पूर्व ही उसने अपने कई अन्य अधिकारियों को भेज दिया था जैसे कि महाबत खाँ, लतीफ खाँ तथा गयासुद्दीन जिससे कि वह रूहाब नदी[4]

१—आधुनिक मुरादाबाद जिले मे।
२—अलबदाऊनी : मुन्तख्वाबात-उल-तवारीख-पृ० ५ हुमायूं के द्वितीय आक्रमण के समय भारत वर्ष का नाम मात्र का बादशाह।
३—अलबदाऊनी : मुन्तख्वाबा त-उत्-तवारीख—पृ० ५।
४—देखिए अरस्किन : बाबर के संस्मरण का अँग्रेजी अनुवाद, सम्भवत: बाबर के व्यक्तिगत संस्मरण में वर्णित 'रहाप' से तात्पर्य है। तुर्की में 'रहाप' लिखा गया है। बम्बई से प्रकाशित फारसी संस्करण में भी यही है। उसमें इसके स्थान पर 'राहत' है। जैसा कि अरस्किन ने सुझाया है यह रापती का नाम नहीं हो सकता, यह तो बाह्य रूप से राम गंगा प्रतीत होती है। देखिए इलियट जिल्द १—पृ० ४९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को पार करके उसके आने की प्रतीक्षा करे। साहस के दम की मदिरा ने इस सेना को सतर्कता तथा इरादों से जो कि बुद्धिमत्ता की प्रथम अवस्था है रोक दिया। शादी खाँ ने यकायक उन पर आक्रमण कर दिया तथा उन्हें पूर्णतया परास्त कर दिया। यह अयोग्य मुगल सिपाही बगैर किसी युद्ध नीति को अपनाए हुए लड़े और दृढ़ता तथा साहस को संतुलित रखने के स्थान पर उसे खो बैठे। लतीफ खाँ तथा कुछ और सैनिक डूब गए। इस दुर्घटना की सूचना पाते ही अली कुली खाँ अपनी सेना को लेकर, जिसमें मेंहदी कासिम खाँ, बाबा सईद किबकाक तथा मुहम्मद अमीन बिवाना थे, शादी खां पर आक्रमण करने चल पड़े।"[1] परन्तु इसके पूर्व ही कि वह नदी पार कर सके उसको ज्ञात हुआ कि हेमू एक बहुत बड़ी सेना को लेकर दिल्ली के पास आ गया था तथा मुगल अत्यधिक संकट में थे। उसने (अली कुली खाँ ने) वहां से पीछे चलने का निश्चय किया परन्तु दिल्ली में सैनिक कार्यवाही इतनी तेजी से हुई तथा मुठभेड इतनी आकस्मिक हुई कि वह तारदी वेग से मिल न सका। अबुल फजल के अनुसार उसका विचार झगड़े से बचकर अथवा निश्चिन्त होकर दिल्ली जाने का था। परन्तु इस घटना के विस्तृत वर्णन को देखने से मालूम होता है, कि न तो वह पूरे उत्साह के साथ शादी खाँ से युद्ध करने की तैयारी ही में था और न उसे इस बात की चिन्ता थी कि तारदी बेग खाँ को सहायता पहुँचाये। अकबर नामा के रचयिता ने स्वयं भी यह लिखा है :—

"उसके (अली कुली खां) आने के पूर्व ही दिल्ली के अधिकारी एक बहुत बड़ी लड़ाई लड़ चुके व हार चुके थे और दिल्ली हेमू के हाथों में आ चुकी थी और इस प्रकार उसे (हेमू को) वह सब साधन प्राप्त थे जिससे कि उसका गर्व तथा उद्दण्डता बढ़े।"[2]

हुमायूं अबुल माली का बड़ा सम्मान करता था परन्तु अपने निजी विचा तथारों अविवेक के कारण उसको हिसार फिरोजा भेज दिया गया था तथा अकबर को पंजाब का प्रशासक नियुक्त किया गया था। जिस समय अकबर तथा उसके शिक्षक व संरक्षक सिकन्दर सूर से मुकाबला करने सरहिन्द की ओर बढ़े उस समय माली खाँ के बहुत से अधिकारियों ने उ... छोड़ दिया तथा अकबर से आ मिले। इस प्रकार परिस्थिति बदल जाने से अ_ल माली बड़ा व्यग्र तथा किंकर्त्तव्य विमूढ़ हुआ। सिकन्दर अब भी स्वतंत्र रूप / विचर रहा था और घंमड़ी सेनापति को ऐसा कोई अवसर न मिल सका वि, वह उसे दबा

१—अबुल फजल : अकबरनामा—पृ० ४६।
२—अबुल फजल : अकबरनामा—पृ० ४६—जिल्द—२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकें।[१] खान खाना, अली कुली खाँ के क्रिया कलापों का निरीक्षण करता रहा और अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के उपरान्त उसे अफगानों से युद्ध करने को नियुक्त किया। उद्दण्ड एंव गर्वीले सेनापति ने अपनी निन्दा को सहन कर लिया। परन्तु फिर कृत्रिम उत्साह से अपना कार्य करता रहा। हुमायूं की मृत्यु के पूर्व भी जब कि तारदी बेग को दिल्ली का गवर्नर बनाया गया था सम्राट द्वारा अबुल माली को हटाने का आदेश दिया गया था क्योंकि वह अनुचित कार्य कर रहा था[२] मृत्यु के पश्चात बैरम खाँ तथा अली कुली खाँ अधिकार प्राप्ति की होड़ में परस्पर प्रतिद्वन्दी बने रहे।

दिल्ली पर अधिकार –

जब कि शादी खाँ विजय पूर्वक दिल्ली की तरफ बढ़ रहा था, हेमू भी दिल्ली पर झपटा और तुगलकाबाद[3] के पास आकर अपना डेरा डाल दिया।

अबुल फजल के तत्कालीन घटनाओं के विस्तृत वर्णन के अनुसार "मुबारिज खाँ के विरोधियों के ऊपर इस दुष्ट (हेमू) की सर्वनाश की और पतनोन्मुख विजयों ने उसे कुत्सित भावनाओं के कुचक्र में डाल दिया और जब............जहाँवानी जन्नत आशियानी की दुखद मृत्यु वाली अवश्यम्भावी घटना की सूचना प्रान्तों में पहुँची तो उसने (हेमू ने) अपनी अदूरदर्शिता के कारण दिल्ली में छाए हुए आतंक से लाभ उठा करके उसी समय सम्राट की शक्तिमान फौज से जिसका कि रक्षक उस समय भगवान ही था युद्ध करने का साहस किया।" नियामतुल्ला ने भी कहा है कि जिस समय अदली को हुमायूं की मृत्यु की सूचना मिली उसने (अदली ने) "हेमू को" अकबर को परास्त करने के लिए भेजा।"[४]

इटावा, काल्पी तथा आगरा होकर हेमू दिल्ली की ओर बढ़ा। आगरा में उसका विरोधी सिकन्दर खाँ उजबेग दिल्ली की ओर वापस चल पड़ा। हेमू ने शादी खाँ की विजय का हाल जानकर आगरा का घेरा डाल दिया और

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायुं : ३५७ : ३५८ अकबरनामा : पृ० ६६२, जिल्द—१ अबुल माली का अन्त बड़ा दुखद हुआ। १३ मई १५६४ ई० को काबुल के मिरजा हाकिम की आज्ञा से उसे प्राण दंड दिया गया।

२—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूं पृ० ३६२।

३—तुगलकाबाद : यह दिल्ली से १२ मील दूर मेहराली-कुतुबपुर मार्ग पर स्थित है। इसकी नींव सन् १३२१ ई में गयासउद्दीन तुगलक ने अपनी राजधानी के लिए डाली थी। यह १३२२ ई० में बनकर तैयार हो गया था तथा १३२७ ई० में उसके बेटे मुहम्मद बिन तुगलक की आज्ञा से खाली कर दिया गया था।

४—नियामतउल्ला : मखजन ए अफागना : डार्न द्वारा अँग्रेजी अनुवाद।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

HEMU'S CAMPING GROUND

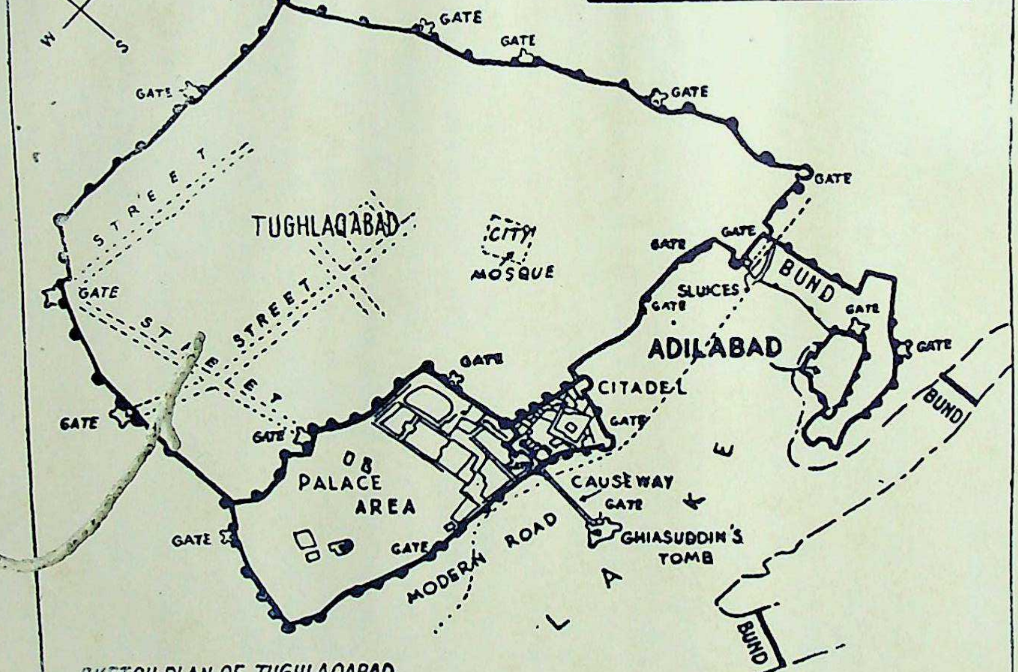

SKETCH PLAN OF TUGHLAQABAD.

Adaptation from Fig 2 Ancient India · Bulletin of the Archaeological Survey of India Number I — Jan. 1946.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसे अपने अधिकार में करके दिल्ली की ओर चल पड़ा[१]। नियामतउल्ला ने यह भी लिखा है कि हेमू ने सौगन्ध खाई थी कि यदि वह दिल्ली को विजित कर सकेगा तो इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेगा परन्तु यह उसके भाग्य में लिखा न था। उसने अपने प्रण को पूरा न किया और सदैव दुख में रहा।[२] परन्तु उस समय के किसी भी अन्य इतिहासकार ने इसका वर्णन नहीं किया है। हेमू के पिता की धार्मिक प्रवृतियों तथा दृढ़ संकल्प को देखते हुए इस लाँछन पर विश्वास करना और भी कठिन हो जाता है।

यह भी कहा जाता है कि उसने (हेमू ने) अफगानों के प्रति बड़ा गर्वान्वित व्यवहार किया। सेना के अधिकांश भाग को हेमू भोज पर आमन्त्रित किया करता था तथा स्वयं एक इतने उँचे सिंहासन पर बैठता था जहाँ कि किसी का हाथ भी नहीं पहुँच सकता था और उस स्थिति में अफगानों से हास्य बिनोद किया करता था तथा उनको आज्ञा देता था कि वह दावत खाये तथा उसे हेमू शाह के रूप में सलाम करें। इससे कुछ अफगान सामन्त अप्रसन्न हो गए और उन्हों ने निश्चय किया कि अवसर आते ही वह उसका पक्ष छोड़ देगे। परन्तु बाद की घटनाए, शादी खां का सम्भल तथा हाजी खाँ का अलवर से सम्मिलित आक्रमण तथा दिल्ली विजय इस बात की पुष्टि नहीं करते है। यहाँ तक कि तथा कथित हेमू की सेना के तोपखाने के अग्रणी भाग के पानी पत के युद्ध में विद्रोह करने का भी कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता क्योंकि हेमू बराबर अपने पर्वताकार युद्ध के हाथियों पर विश्वास करता रहा। तोपखाने के बहुत आगे बढ़ जाने से हेमू को हानि अवश्य हुई परन्तु उससे वह चिन्तित नहीं हुआ। अकबरनामा के रचयिता ने यथार्थ ही लिखा है कि :—

"अपार धन, सैनिको की संख्या तथा युद्ध के सामान ने जिन्हें भारत के विभिन्न शासक एकत्रित करके छोड़ गए थे उसे और भी साहसिक एवं निर्भीक बना दिया तथा इसी प्रकार राज्य के नगरों तथा कस्बों को उनके विजेता अधिकारियों से खाली करा लेने का भी प्रभक्ष पड़ा।"

"हेमू दिल्ली पर पूरी तैयारी के साथ चढ़ ... अन्ततोगत्वा वह अपनी दुःसाहसपूर्ण योजना की पूर्ति के लिए ५०,००० घुड़सवार १०...० हाथी, ५१ तोपे तथा ५०० छोटी तोपे लेकर अग्रसर हुआ।[3]

अन्त में—

"प्रथम वर्ष के पवित्र मास २४ वीं मिहिर को मंगलवार, पूर्ण तैयारी के साथ जिल हिज्जा ९६३ अर्थात् ६ अक्तूबर १५५६ ई०, को हेमू दिल्ली के पास

१—फिरिश्ता पृ० १८४— से १९०।
२—नियामतउल्ला : मखजन—ए—अफागना।
३—अबुल फजल-अकबर-नामा—जिल्द २ पृ० ४७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहुँच गया तथा उसने तुगलकाबाद के पास डेरा डाला। फलतः मुगल अधिकारीगण एकत्रित हुए एवं परामर्श किया। बहुत से भय के कारण लड़ना नहीं चाहते थे। उनका कहना था कि जब तक कि बादशाह की सेना न आवे उनको चाहिए कि वह दुर्ग को दृढ़ करते रहे। कुछ ने इस बात की अनुमति दी कि अली कुली खां के तथा उस देश (सम्भल) को विजित करने गए हुए अधिकारियों के आने की प्रतीक्षा की जाए। कुछ वीर जिन्हें यश के लिए जीवन दान करने में संकोच नही था तथा युद्ध क्षेत्र को भोजन कक्ष से अधिक प्रिय समझते थे कह रहे थे कि इस अवसर को ईश्वर प्रदत्त उपहार समझा जाए तथा तुरन्त युद्ध के कार्य में व्यस्त हो जाना चाहिए।

गजल

भाग्य कहता है उसको त्याज्य समझो।
जो आज का काम कल पर छोड़ता है॥

अन्त में उन सबने युद्ध करने का निश्चय कर लिया तथा साहस से कमर बांधी।"[1]

तारदी वेग खां ने दिल्ली में शीघ्रता से हेमू का मुकाबिला करने की तैयारियां शुरू कर दी। उसने उन सभी अधिकारियों को एकत्रित किया जिन्हों ने कि राजधानी में आश्रय प्राप्त किया था। इनमें सब से प्रमुख अब्दुल्ला खां उजबेग तथा बदख्शान के लाल खां थे। इनके अतिरिक्त इस्कन्दर खां, किया खां काक तथा हैदर मुम्हमद खां थे। बैरम खां ने जिसे तारदी वेग के प्रति स्पर्घा तथा सामप्रदायिकता की विचार धारा के कारण कोई रुचि न थी, पीर मुहम्मद खां शेरवानी को दिल्ली का प्रबन्ध देखने भेजा।[2] अबुल फजल ने मुगल फौजों की हार का कारण पीर मुहम्मद को बताया है। उसके अनुसार "यह (दिल्ली का पतन) सब भाग्य वश हुआ जिसका उद्देश्य केवल परमात्मा को ज्ञात था अथवा यह सब मौलाना पीर मुहम्मद के निकृष्ट संकल्पो के कारण हुआ। उसके अनुसार तारदी बेग ने अपना कर्तव्य[3] भली भांति निबाहा "उसने अपना हृदय साहसपूर्ण बनाया तथा उन सबका साहस बढ़ाया जिनमें साहस की कमी थी।[4] बदाऊनी ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि खान खाना ने जो स्वस्थ होते हुए भी तारगी बेग से अलग हो गया था और उसके बावजूद भी उसको "बड़ा भाई" कहता था। सेना की हार

१—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द २ पृ० ४७।
२—अल-बदाऊनी-पृ०-५
३—अबुल फजल : अकबरनामा जिल्द २-पृ० ४६।
४—वही पृ० ४७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का कारण तारदी बेग का विश्वासघात जता कर तथा सम्राट को खान जमा तथा अन्य लोगों की साक्षी इसकी पुष्टि में दिलाई और इस बात का पूर्ण विश्वास दिलाकर सब प्रकार की आज्ञा प्राप्त कर ली कि उसे मार दिया जाय।[1] उसके साथी ख्वाजा सुल्तान अली तथा मीर मुन्शी जिन पर की विश्वासघात का संदेह था, तारदी बेग के एक सम्बन्धी खंजर बेग के साथ जेल भेज दिए गए। आइने-अकबरी के लेखक ने भी तारदी बेग पर लड़ाइयों के बाद ही तुरन्त बिना विचार दिल्ली खाली कर देने का आरोप लगाया है।[2]

बैरम खाँ ने परिस्थिति की गम्भीरता को समझा। कुछ मुगल सेना-पतियों ने काबुल चले जाने की सलाह दी। परन्तु खानखाना वहाँ की परिस्थिति से भी भिज्ञ था जिसके कारण कि मुगल महिलाएँ लाहौर आश्रय प्राप्त करने को भेजी जा रही थी। खान जमन उस समय मेरठ में था जब उसने इस दुर्घटना का हाल सुना तथा वह दिल्ली बचाकर सम्राट से मिलने नौशेहरा की ओर चल पड़ा जो (सम्राट) इस दौरान में जलन्धर में था तथा पंजाब के अतिरिक्त सभी प्रान्तों के छिन जाने के कारण किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा था।[3]

अकबर ने बैरम खाँ पर पूर्ण विश्वास किया तथा उसे खान बाबा की उपाधि प्रदान की। उसने बैरम खाँ से विश्वासपात्र बने रहने का वचन पा लिया। परन्तु जब उसने मुगल अधिकारियों की सभा बुलाई तो उसमें अधिकांश इस मत के थे कि "चूंकि शत्रु की सेना में १,००,००० अश्वारोही तथा शाही सेना में कठिनता से २०,००० होंगे, अतः यही बुद्धिमानी होगी कि काबुल वापस चले जाया जाय।" बैरम खाँ ने इसका दृढ़ता से विरोध किया। अकबर भी भारत में रहने के पक्ष में था। अन्ततः बादवाला मत मान्य हुआ तथा मुगलों ने भारत में ठहरने तथा युद्ध करने का निश्चय किया। फलस्वरूप मुगल सैनिक शिविर में पानीपत की ओर कूच करने की तैयारियाँ भी होने लगी। जब कि अकबर आखेट में व्यस्त था बैरम खां तारदी बेग के पास गया तथा उसे अपने खेमे में ले आया। संध्या के समय जबकि वह प्रार्थना में लगा हुआ था उस समय उसको मरवा दिया।[4] उसके ऊपर इस बात का अभियोग लगाया गया था कि उसने उस समय दिल्ली को छोड़ दिया जब कि उसकी रक्षा करनी चाहिए थी।

१—अलबदाऊनी पृ० ६।

२—अबुल फजल : ब्लौचमैन द्वारा अनुवादित-आईन-ए-अकबरी जिल्द २—पृ० ३१८,३१९।

३—फिरिश्ता : ब्रिग्स द्वारा अंग्रेजी अनुवाद। पृ० १८४-१९०।

४—अलबदाऊनी : पृ० ६-७।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर के आने पर उसने अपने किये की सूचना उसे दे दी तथा यह भी सूचित किया कि "दया का इस परिस्थिति में भयंकर परिणाम हो सकता था क्योंकि मुगलों की आशाएँ उस समय ऐसे ही योजनाओं पर अवलम्बित थी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक शक्ति प्रयोग में ला सकता था।" अकबर को बिश्वास हो गया कि यदि तारदी बेग खाँ भी इस प्रकार उदाहरणार्थ दंडित न किया जाता तो मुगल सेना की परिस्थिति कुछ और ही होती तथा बाहरी लोगों की भावनायें कुछ इस प्रकार की थी कि शेरशाह वाला अवसर (अर्थात् मुगलों का भारत से निष्कासन) एक बार पुनः दुहरा न जाये।[1]

वैरम खां का तारदी बेग को हत्या का दण्ड दिलाने में इस प्रत्युत्पन्नता का बड़ा अच्छा प्रभाव चगताई सामन्तों पर बहुत पड़ा जो कि उसे उक्तियुक्त न समझते थे। परन्तु वह निराश हो गये थे और उनके पास अकबर के शिक्षक व संरक्षक की आज्ञा पालन करने के अतिरिक्त कोई चारा न रहा। फिरिश्ता बदाऊँनी तथा अबुल फजल सब इसका अनुमोदन करते हैं।

दिल्ली का युद्ध **७ अक्तूबर १५५६**

अबुल फजल के अनुसार मुगलों तथा हेमू की सेनाएँ पवित्र माह मिहिर की अरद २५ वीं—तदनुसार २ जिलहिज्जा—७ अक्तूबर १५५६ को तैयार होकर युद्ध-स्थल में एक दूसरे के सम्मुख आईं, दोनों पक्षों के प्रमुख सेनापति निम्नांकित थे:—

मुगल पक्ष		हेमू—पक्ष
१—तारदी बेग खां		१—हेमू—केन्द्र तथा बामपक्ष के अध्यक्ष।
२—अफजल खां		
३—असरफ खाँ		
४—मौलाना पीर मुहम्मद शेरवानी—बैरम का प्रतिनिधि		२—शादी खां (सम्भल से)।
५—हैदर मुहम्मद खां ६—कासिम माखलिक ७—हैदर बख्शी ८—अली दोस्त खां बाहेजी	दाहिना पक्ष	३—हाजी खां अलवर से।
९—इस्कंदर खां तथा दूसरी टुकड़ियां।	बाम पक्ष	४—राय हुसेन जलवानी सम्मुख तथा दाहिना पक्ष।
१०—अब्दुल्ला उजबेग ११—क्रिया खां १२—लाल खां	सम्मुख पक्ष	

१—फिरिश्ता : पृ० १८४-१९०।

२—अबुल फजल : अकबरनामा—जिल्द २, पृ० ४८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबरनामा के रचयिता ने हेमू की सेना की बनावट की प्रशंसा की है। उनके शब्दों में बैरी के पक्ष में भी टुकड़ियाँ सैनिक तरीके पर खड़ी की गई थीं और उन्होंने आगे बढ़कर पूर्ण प्रयास किये थे।

मुगलों के पक्ष से आक्रमण आरम्भ हुआ। उनकी आगे की सेना ने हेमू की सेना के दाहिने पक्ष पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण का श्रीगणेश आगे की सेना के सेनापति अब्दुल्ला उजबेग तथा वामपक्ष के सेनापति इस्कन्दर मिर्जा द्वारा हुआ। उनका आकस्मिक आक्रमण सफल रहा और "उन्होंने हेमू की सेना के अग्रिम एवं दाहिने पक्ष को भगा दिया और खदेड़ते रहे"[1]। बदाऊनी ने बदख्शाँ के लाल खाँ का दाहिने पक्ष पर रहना लिखा है परन्तु यह असत्य है। बल्कि उन्होंने बैरी की सेना को पूरी तरह भगा दिया और अपने सामने की ओर होंडल तथा पालवाल के कस्बे तक पीछा करते रहे। उनके हाथ बहुत सा सामान लगा। "अबुल फजल के अनुसार" ४०० प्रसिद्ध हाथी भी इसी के लूट के सामान में सम्मिलित थे तथा हेमू की सेना का प्रसिद्ध नेता राय हुसैन जलवानी बृहत जन संहार रूपी सागर में डूब गया। ३००० से अधिक बैरी युद्ध में मृत्यु के घाट उतर गए।

हेमू अलवर से सहायता के लिए सेना की प्रतीक्षा कर रहा था। मुगलों की प्रारम्भिक सफलता देखकर वह आगे बढ़ आया था तथा "पर्वतों जैसे बड़े हाथियों सहित सेना के मध्य में भी युद्ध से अलग रहा था। हाजी खाँ जैसे ही, अलवर से आया कि हेमू ने आवाज दी और तारदी बेग खां पर आक्रमण कर दिया जिसके पास मुठ्ठी भर आदमी थे और एक ही बार में उसे पूर्णतया हरा दिया"।[2]

अबुल फजल ने हेमू की युद्धनीति का व इस आश्चर्यजनक विजय का एक और वर्णन इन शब्दों में किया है :—

"घमण्डी हेमू ने जिसने अदम्य साहस के साथ चातुर्यय को भी अपना लिया था, युद्ध के मैदान में विकट चालाकी की रीति अपनाई। उसने ३०० चुने हुए हाथी तथा जीवन न्यौछाबर करने वाले कुछ वीरों को शेष सेना से अलग कर लिया और उस समय की प्रतीक्षा करने लगा जब उसे भागना अथवा आक्रमण करना पड़ता। जिस समय कि मुगलों की अल्प समय के लिए विजयी

१—अबुलफजल : ब्लाचमैन द्वारा आईन-ए-अकबरी का अंग्रेजी अनुवाद : पृ० ३६५।

"इस्कन्दर मिर्जा जो बाजू (जुरंगघर) का नायक था : उसके दल ने हेमू के अग्रणी भाग (हरावाल) तथा दाए बाजू (बुरंगघर) को परास्त कर दिया और बहुत से भगोड़ों को मार गिराया।"

२—अलबदाऊनी : पृ० ६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेना ने अपने अनुकूल परिस्थिति बना ली थी और लड़ने वालों को खदेड़ रही थी तथा उसके कुछ लोग लूट का सामान एकत्रित करने में व्यस्त थे; व तारदी बेग खां जिसको इस वीरता के मैदान में सम्मान का पद प्राप्त था, थोड़े से सैनिकों के साथ दृश्य पर विचार-मग्न खड़ा था। चतुर हेमू ने यह अवसर देखकर उन पर आक्रमण कर दिया।''

''मुगल सेनापति हेमू के इस भीषण आक्रमण का मुकाबला करने के लिए पर्याप्त साहस संचित न कर सके। पीर मुहम्मद ने भी भागना ही पसन्द किया। तारदी वेग खां सब कुछ खोया हुआ जानकर भाग खड़ा हुआ। हेमू तुरन्त ही दिल्ली नगर में प्रविष्ट हुआ। जो मुगल सेनापति आगे गया हुआ था उसने जब दिल्ली वापस आकर इस परिवर्तित परिस्थिति को देखा तो वह भी तुरन्त ही भाग खड़ा हुआ। परन्तु हेमू ने अपने सैनिकों को उनका पीछा करने से मना कर दिया।''

सिंहासनारोहण—

हेमू की यह दिल्ली विजय निर्णयात्मक थी और उसने तुरन्त ही उसे सुदृढ़ बनाना आरम्भ कर दिया।

''संक्षेप में हेमू ने जो कि अपनी बड़ी सेना को तितर-बितर तथा अनिश्चित अवस्था में देख रहा था इस घटना को (तारदी वेग खाँ का भागना) अपने वैरी की चाल समझा तथा उनका पीछा नहीं किया। तारदी वेग खां ने लेकिन अपनी सेना को घमण्डपूर्वक उसी युद्धक्षेत्र में ला खड़ा किया। सेना के बड़े दलों को विचलित कर देने वाले वीरों ने जिन्होंने सैनिकों का पीछा किया था जब वह वापस आये आश्चर्य चकित रह गये और तुरन्त उसी दिशा में चल दिये, जिधर तारदी वेग भाग गया था।''

''इसके पश्चात् हेमू दिल्ली में प्रविष्ट हुआ और अपनी उद्दण्डता में और भी वृद्धि कर दी जिससे उसका गर्व रूपी नशा पागलपन में परिणित हो गया।[१]''

इस महान विजय को प्राप्त करने के उपरान्त हेमू ने अपने को दिल्ली का सम्राट घोषित करने का निश्चय किया।[२] अब तक उसने अदली के ही नाम पर युद्ध संचालन तथा शासन किया था; व अधिकार प्राप्त किये थे परन्तु दिल्ली तथा आगरा जैसे स्थानों की आकस्मिक विजयों को सुदृढ़ तब तक नहीं

१—अलबदाऊनी : पृ० ६-७

२—साधु धर्ममित्र द्वारा प्रकाशित वंश-वृक्ष से ज्ञात होता है कि हेमू ने अपने भाई जुझार राव को दिल्ली के दक्षिणी भू-भाग का सूबा नियुक्त किया था। और महिपाल व रमैया को सेना-नायक बनाया था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बनाया जा सकता था जब तक वह स्वयं सम्राट के पूर्ण अधिकार न प्राप्त कर ले। इस कथन में कोई सत्यता नहीं जान पड़ती कि हेमू ने अदली के आदेश के विरुद्ध शासन के पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिए। अदली की बाद की चिन्ता-जनक हालत का, व पानीपत में हेमू की मृत्यु पर उसके खेद प्रकट करने से, स्पष्ट है कि अदली पूर्वी प्रान्तों ही से सन्तुष्ट था और यदि हेमू दिल्ली के सम्राट पद का भोग करने के लिए जीवित भी रहता तो अदली उसको पूर्ण सहयोग देता। अन्य अफगानों की स्वामी-भक्ति का पता भी उनके पानीपत के मैदान में प्रदर्शित विकट विरोधमय युद्ध, तथा अकबर के शासन के ६ आरम्भिक वर्षों में हुए युद्धों से, पता चलता है, जो कि हेमू की मृत्यु के उपरान्त भी चलते रहें।

जहाँ तक कि बदाऊनी द्वारा लिखित विक्रमाजीत की उपाधि ग्रहण करने का सम्बन्ध है उसके विषय में पहले ही सन्देह व्यक्त कर दिया गया है। उसको चुनार की विजय के पश्चात् ही अदली द्वारा यह सम्मान सूचक पद प्राप्त हुआ था और अबुल फजल ने यह सत्य ही लिखा है कि उसको कुछ समय पहले से यह उपाधि प्राप्त रही। दिल्ली विजय ने उसे अपने को हिन्दुस्तान का सम्राट घोषित करने का स्वर्ण अवसर प्रदान किया।

बदाऊनी के इस कथन में कोई सत्यता नहीं जान पड़ती कि "जब उसने इस्लाम धर्म के कानूनों को उलटने में अपने पूरे प्रयास कर लिए तो वह १५०० युद्ध के हाथियों तथा असंख्य एवं असीमित धनराशि व बहुत बड़ी सेना के साथ पानीपत के मैदान में युद्ध करने के लिए आया।[१]" हेमू सिंहासन पर ७ अक्तूबर १५५६ को बैठा और यदि वह तिथि सत्य है तो उसने केवल २९ दिन शासन किया, जब कि ५ नवम्बर १५५६ ई० को उसका भाग्य सदैव के लिए पानीपत के द्वितीय युद्ध के फलस्वरूप मृत्यु द्वारा सहसा अस्त हो गया। इतने थोड़े समय में जब कि उसे मुगलों द्वारा पूरे युद्ध की आशंका बनी हुई थी, हेमू सिवाय अत्यन्त उदारता तथा धार्मिक सहिष्णुता की भावना द्वारा राज्य करने के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं सकता था। यद्यपि हेमू की सेना में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही थे परन्तु अपनी जाति भाईयों तथा राजपूत के अलावा अफगान सबसे अधिक प्रमुख थे। ऐसी दशा में, यह उसकी समझ के बाहर था कि वह इस्लाम के नियमों को उलटने की सोचता। इसके विपरीत यह स्पष्ट है कि अफगानों को उस पर पूरा भरोसा था तथा उन्होंने पानीपत के मैदान में वीरतापूर्वक उसके लिए लड़कर प्राण दिए। इस युद्ध में हेमू की आकस्मिक मृत्यु ही थी जिसने युद्ध का पांसा पलट दिया न कि अफगानों का विश्वासघात।

१—अलबदाऊनी : मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० ९-७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय—७

पानीपत की दूसरी लड़ाई

सन् १५५६ ई० भारत भीषण आर्थिक और राजनैतिक समस्या की लपेट में था। दिल्ली में जुलाई सन १५५५ ई० में शीघ्रता में पुनः स्थापित मुगल आधिपत्य बहुत भ्रमात्मक सिद्ध हुआ और हुमायूँ की मृत्यु के साथ-साथ अचानक उसका अन्त हो गया। दिल्ली का सिंहासन एक बार पुनः कई प्रतिद्व-दियों के मध्य संघर्ष का कारण बना, जिनमें से प्रमुख थे—हेमू, सिकन्दर और अकबर। शिवालिक की उत्तरी पहाड़ियों में सिकन्दर के उलझे रहने और अदली के पूर्व में तथा चुनार के चारों ओर के प्रदेशों से सन्तुष्ट रहने के कारण, दिल्ली के सिंहासन के लिए हेमू सबसे प्रभावशाली आकांक्षी बन गया। साम्राज्य की राजधानी पर जो, तत्कालीन भारत की भी राजधानी थी, अधिकार हो जाने से, हेमू को मनोवांछित अवसर मिल गया, और उसने सफलतापूर्वक उससे लाभ उठाया। ग्वालियर और चुनार में सूर सम्राटों के विशाल कोष को पाकर, प्रथम श्रेणी के अफगान और राजपूत सैनिकों सहित और पूर्व से पर्वत सदृश युद्ध के हाथियों के अनुपम दल से सम्पन्न, हेमू १५५६ ई० में दिल्ली का सम्राट हो गया।

मुगल बड़ी कठिन परिस्थितियों में थे। उन्हें सिकन्दर के सम्मुख टिकना तक कठिन प्रतीत हो रहा था। काबुल में भी उनकी दशा शोचनीय होती जा रही थी। यहाँ तक कि मुगल स्त्रियाँ, जो वहाँ रुक गई थीं, अपने को सुरक्षित अनुभव नहीं कर रही थी और उन्हें लाहौर लाया जा रहा था। मुगल सम्राट के साथ साथ, जिसको एक स्थान से दूसरे स्थान को भागना पड़ा, इन मुगल स्त्रियों को भी भाग्य के तीव्र परिवर्तनों को भोगना पड़ा। हुमायूँ ने यह प्रबन्ध किया था कि जैसे ही वह दिल्ली में अपने पैर जमा लेगा, वे भारत आ जाएंगी। लेकिन उसकी मृत्यु और तदुपरान्त के फौजी झगड़ों ने जिनमें निम्नांकित मुख्य थे, यह योजना भंग कर दी :—

इनमें से प्रमुखतम ये थे।

(क) अबुल—मा—अली के विद्रोह का दमन।

(ख) सिकन्दर अफगान के विरुद्ध कार्यवाही; और।

(ग) पानीपत में हेमू के साथ संघर्ष।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब हुमायूँ अपनी मृत्यु शय्या पर पड़ा था तारदी बेग खाँ ने, कामरान मिर्ज़ा के पुत्र मिर्जा अबुल कासिम को, बहुत से शाही खास और कुछ चुने हुए हाथियों को लेकर ख्वाजा सुल्तान अली बजीर खां और मीर मुन्शी असरफ खां के साथ सम्राट को अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने भेजा। "उसी वर्ष मिर्जा सुलेमान काबुल को जीतने के विचार से इब्राहीम मिर्जा के साथ आया, और मुनीम खां ने, घिर जाने पर, दरबार को ब्योरा भेजा। तब सम्राट ने मुहम्मद कुली खां बरलास और अत्ता खाँ तथा खिज़ खाँ हजारा को कुछ व्यक्तियों के साथ (हुमायूँ की) विधवा रानी और अन्य पत्नियों को जो काबुल में थी, लाने के लिए नियुक्त किया।" [1]

इसीलिए जब तक काबुल को भय नहीं हुआ, मुगल स्त्रियाँ भारत के लिए रवाना न हो सकी। स्त्रियाँ शिविर में उसके भंग होने तक रहीं और तत्पश्चात वे लाहौर गईं और वहाँ से ७ दिसम्बर १५५७ ई० को उन्होंने दिल्ली की ओर यात्रा की। [2]

१५५६ ई० में भारत में मुगल अपने परिवार की स्त्रियों से दूर थे और चारों ओर कठिनाइयों से घिरे थे। भारत के विभिन्न भागों में राजनैतिक स्थिति डांवाडोल थी और उनके बिलकुल विपरीत थी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा बिल्कुल स्वतंत्र राज्य थे। कर्रानी वहाँ शासन करते थे। हेमू की विजयों के कारण वे अदली के नाम मात्र को राज भक्त थे। सन १५२७ ई० में परास्त हो जाने के पश्चात राजपूत पृष्ठभूमि में थे। उनकी राजनैतिक क्रियाएँ बीकानेर, जोधपुर और जैसलमेर में केन्द्रित हो गई थी। मालवा और गुजरात ने अपनी स्वतंत्रता पहले ही से घोषित कर दी थी। सुविख्यात रानी दुर्गावती के आधीन झारखण्ड या गोंडवाना हिन्दू सामन्त-राज्य के रूप में पुनर्जीवित हो रहा था। दक्षिण में विजय नगर साम्राज्य अपनी कीर्ति के शिखर पर था। सुदूर उत्तर और पश्चिम, काश्मीर, सिन्ध और बलूचिस्तान में स्वाधीन और स्वतंत्र राज्य थे।

देश की ऐसी परिस्थिति में बालक बादशाह (अकबर) के राज्याभिषेक ने केवल प्रभुता के लिए अधिकार स्थापित कर दिया। जब कालानौर में उसका यह संस्कार सम्पन्न हुआ, तो उसके अधिकार में कोई निश्चित साम्राज्य नहीं कहा जा सकता था। [3]

१—अल बदाऊनी : मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० ५।

२—गुलबदन का हुमायूँ नामा-प्रस्तावना-भाग ३—५६—५८। अर्सकिन को भी देखिए। पृ० ५०९।

३—विन्सेट : स्मिथ : अकबर—पृ० ३१—३२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर और उसके शिक्षक-अभिभावक बैरम खाँ के सामने सर्वप्रथम और सबसे प्रमुख कार्य दिल्ली में पुनः अधिकार स्थापित करना और तत्पश्चात हारे हुए प्रदेशों को जीतना था। तारदी बेग खाँ की हत्या के पश्चात और बालक सम्राट के भारत में ठहरने का निश्चय करने पर मुगलों ने हेमू से मोरचा लेने की तैयारियाँ आरम्भ कर दी।

आर्थिक स्थिति—

आगरा और दिल्ली क्षेत्रों में विरोधी सूर दावेदारों में लगातार होने वाले युद्धों ने प्रदेश को उपज विहीन और व्याकुलतापूर्ण कर दिया था। बदाऊनी के प्रमाण के अनुसार जो १५५५-५६ ई० के अकाल का साक्षी था, खाद्य सामग्री का अभाव २ वर्ष तक रहा, और राक्षसी दृश्य देखने में आते थे। अकाल, वर्षा न होने के कारण पड़े जब कि सेनाओं के एकत्र होने से विनाश और कष्ट बढ़ गए। बदाऊनी ने लिखा है कि जब आगरा के दक्षिण-पश्चिम से ५६ मील दूर बयाना के निकट हेमू ने डेरा डाला, तो—

"लोग[1]" रोटी "शब्द कहते-कहते मर गए, जब कि वह एक लाख व्यक्तियों के जीवन का मूल्य जौ के एक दाने से अधिक नहीं आंकता था, वह अपने ५०० हाथियों को चावल, चीनी और मक्खन खिलाता था। सारा संसार आश्चर्यचकित और रुष्ट था।"

आर्थिक स्थिति और भारी विपत्तियों के होते हुए भी हेमू ने अपने रसद के मामले को ठीक कर लिया और जब वह दिल्ली में था तो उसने अपनी

१—अलबदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख-इलियट तथा डासन :५: ४९०-४९१ और अनुवाद में क्रिया सम्बन्धी परिवर्तनों के साथ रैंकिंग : जिल्द १ : पृष्ठ ५४९-५१ हेमू की बर्बरता केवल बदाऊनी द्वारा ही उल्लिखित है। अन्य इतिहासकार इस विषय पर मौन हैं। अबुल फजल जो स्वयं बर्बर हो सकता था, अपने तत्व ज्ञान के होते हुए भी, हेमू के "पौरुष" के गुणों पर विश्वास करता है। (अकबरनामा—२-६९)। अबुल फजल की बर्बरता के प्रमाण के लिए हुमायूं के प्रति कुछ विद्रोहियों के दण्ड का घृणास्पद वर्णन देखिए (अकबरनामा १-३१५-अध्याय २३)। वह अपनी आत्मकथा में अकाल और सम्बन्धित महामारियों का उल्लेख करता है। वह कहता है कि घोर अकाल महामान्य के राज्याभिषेक के वर्ष (अकबरनामा ९६३; १६ नवम्बर १५५६ ई०) के आरम्भ में हुआ। राजधानी विनिष्ट हो गई और कुछ मकानों के अतिरिक्त कुछ भी शेष न रहा (निर्देश दिल्ली की ओर ही होना) एक संक्रामक प्लेग फैली और हिन्दुस्तान के बहुत से शहरों में फैल गई। असंख्य व्यक्ति मर गए। (आईन-ए-अकबरी जिल्द ३ पृ० ४२६)। वही लेखक इस तथ्य की भी पुष्टि करता है कि बहुत से व्यक्ति मनुष्य का मांस तक खाने लगे थे। और अकेले डेरा डालने को और खाने को दल बन गए थे। (अकबरनामा—२-५७)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फौज की शक्ति चौगुनी बढ़ा ली। कुछ ही दिनों के अन्दर वह युद्ध के १५०० हाथियों, अथाह और असंख्य खजानों और मुगलों के विरुद्ध कूच करने वाली एक विशाल सेना के साथ तैयार था।[१]

मुगल सेना में किसी भी समय १४०० हाथियों से अधिक सक्रिय न रहे। अकबर के हाथी खाने में कुल ६७५१ हाथी थे। सेना में हाथी भारी तोपें खींचने के काम आते थे। हाथियों को कवच पहनाने तथा हाथियों को हथियारों से लैस करने की प्रथा में मुगलों ने हेमू का अनुकरण किया।

पानीपत के युद्ध का वर्णन करते हुए अबुल-फजल कहता है—

"दुर्भाग्य का मारा हेमू मूर्खतापूर्ण प्रेरणाओं के एकत्रित होने के कारण जैसा कि संक्षेप में पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है, बराबर दंभ और उद्दंडता की ओर झुकता जा रहा था। तार्दी खाँ की विपदा तथा आपत्तियों से भारतीय सेना विशेष उत्साहित थी और उसमें भाग्य के आतिथ्यकारों से टक्कर लेने के लिए साहस भरा था। बड़े और छोटे घमन्ड से भरे थे और विप्लवकारी कल्पनाओं में निमग्न थे।"[२]

फिरिश्ता के कथनानुसार भी हेमू की सेना इतनी विशाल थी कि उसने "बादशाह से मिलने के लिए, टिड्डी दल व रेगिस्तान की चीटियों के समान असंख्य सेना के साथ, राजधानी से बाहर की ओर कूच किया।"[३]

हेमू की सेना का अग्रदल—

दिल्ली के राजसिंहासन के लिए युद्ध करने का निश्चय करके बैरम खां ने मुगल कुलीनों व सामन्तों को एक ओजपूर्ण भाषण दिया, जिनमें से अधिकतर अकबर के हितों की रक्षा करने के लिए और साधारण विपत्ति के सामने साथ रहने के लिए एक थे। मुगल सेना ऐतिहासिक रण-क्षेत्र पानीपत की ओर बढ़ी। दूसरी ओर "हेमू ने, गुण और संख्या में महान अपनी सशस्त्र सेना के अग्रदल को, मुबारक खां और बहादुर खां जो उसके प्रमुख अधिकारी थे, के संरक्षण में दिल्ली से वस्तुतः ३० मील की दूरी पर स्थित पानीपत की ओर भेज दिया और युद्ध की तैयारियां आरम्भ कर दी।[४] यह सेना का अग्रदल बहुत अच्छी प्रकार रक्षित नहीं था और संख्या में भी न्यून था। मुख्य सेना से इतने पूर्व ऐसे अग्रदल को भेजकर हेमू ने भूल की। मुगलों की ओर से लगभग १० हजार

१—वही पृ० ७ : देखिए डा० शर्मा : मुगल राज्य तथा शासन : बम्बई—१९५१—पृ० १४७-१४८।

२—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द-२—पृ० ५८-५९।

३—फिरिश्ता : जिल्द २ : ब्रिग्स : पृ० १८४ से १९०।

४—अबुल फजल : अकबरनामा पृ० ५८

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सशस्त्र सेना के अग्रदल ने अली कुली खां उजबक के नेतृत्व में कूच किया। उसके साथ "लाल खां बदाख्शी, मो० कुली अजबेग और सामन्जी खां जैसे सक्रिय और युद्ध-प्रेमी सैनिक" थे। अबुल फजल के अनुसार 'हेमू की सशस्त्र सेना पर अधिकार कर लिया गया और शत्रु का अग्रदल बिना लड़े ही भाग खड़ा हुआ।'[1] बदाऊनी थोड़ा भिन्न वर्णन करता है, जब वह कहता है :—

"उसने अपनी सशस्त्र सेना अपने सामने भेज दी और खान जमन, इस्कन्दर खां जैसे तथा अन्य, बड़े अमीरों के दल को, जो अग्रदल के रूप में बढ़ रहे थे, उसे भेंट करने का अवसर उन्हें पानीपत के कुछ लड़ाई करने के बाद मिला।"[2] बाद का वर्णन वास्तविकता के अधिक निकट प्रतीत होता है; लेकिन यह भी सच है कि हेमू का सशस्त्र तोपची सैन्यदल संख्या में न्यून होने के कारण और थोड़ा अधिक आगे बढ़ जाने के कारण मुगल अग्रदल का सहज शिकार हो गया। यह कहा गया है कि हेमू की सशस्त्र तोपची सेना के कार्य-वाहक अधिकारियों ने उसको धोखा दिया या जान बूझकर आगे बढ़ गए। लेकिन बदाऊनी का उपर्युक्त वर्णन पूर्णतः प्रमाणित नहीं होता है। अल-बदाऊनी अगली कुछ पंक्तियों में केवल मान लेता है कि अफगान हेमू की संरक्षता, आदि के वितरण से संतुष्ट नहीं थे, लेकिन पानीपत के युद्ध के सम्पूर्ण ब्यौरेवार कार्य-वाहियों के बीच कोई न्यूनता दृष्टिगत नहीं होती। उनकी पराजय उनकी संख्या में शक्ति कम होने के कारण हुई। जैसा कि डा० त्रिपाठी इसके बारे में कहते हैं—"अपने सशस्त्र सैन्यदल को निर्बल रक्षक के आधीन पहले ही भेज देना हेमू के लिए एक घातक भूल सिद्ध हुई।"[3]

हेमू का आगे बढ़ना—

लेकिन हेमू सशस्त्र सेना के बन्दी हो जाने पर विचलित नहीं हुआ क्योंकि वह महत्वपूर्ण नहीं थी। वह अचल रहा और पानीपत रण क्षेत्र की ओर पूर्ण युद्ध-व्यवस्था के साथ तेजी से बढ़ा। उसने अपनी सेना का निम्न-लिखित नायकों के अधीन तीन विभागों में प्रबन्ध किया।[4]

(१) दक्षिण पक्ष: शादी खां काकर[5] के अधीन।

(२) वाम पक्ष : हेमू के भानजे रमैया के अधीन जो वीरता के लिए मान्य था :

(३) मध्य भाग, स्वयं हेमू के अधीन :

१—अबुल फजल : अकबरनामा : पृ० ५९।
२—अल-बदाऊनी-मुन्तखाबात-उत-तवारीख। पृ० ७ व ८।
३—डा०आर०पी०त्रिपाठी—मुगल साम्राज्य का उत्थान तथा पतन-पृ०-१७५।
४—अबुल फजल : अकबरनामा : पृ० ५९।
५—अफगान जाति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेमू के रण-मत्त हाथी—

हेमू अधिकतर अपने युद्ध के हाथियों पर विश्वास करता था जिसका विशद वर्णन अकबरनामा में इन शब्दों में उपलब्ध है[१]—

"वह अपने साथ पहाड़ सदृश्य और अजगर के से मुँह वाले हाथियों को ले जाता था जो अनेक भारतीय शासकों द्वारा एकत्रित किए गए थे, और जो दैवी देन के कारण तथा आडम्बर पूर्ण और अल्प दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों के लिए एक चेतावनी के रूप में, यथार्थ रूप एवं तत्व में, इस परदेशी के लिए एक साथ जुटा दिए गए थे। उनमें ५०० ताड़ समान (सीरा) हाथी थे, जिनमें से प्रत्येक तेजी और चतुरता में अनुपम था। शक्ति और साहस में[२] वे आदर्श थे, और इन सक्रिय पहलवानों का दौड़ना, "दौड़" नहीं कही जा सकती थी क्योंकि यद्यपि "ईराक (अरब)" की घुड़दौड़ तेज कही जा सकती थी परन्तु वह इन हाथियों की दौड़ से तेज नहीं हो सकती थी। वास्तव में इन सुप्रसिद्ध हाथियों में से प्रत्येक एक बड़ी सेना को तितर-बितर कर सकता था। मुख्यत: उनका कार्य सशस्त्र सेना की व्यवस्था को अव्यवस्थित कर देना था, क्योंकि घोड़ों ने ऐसे भीषण स्वरूपों का सामना कभी नहीं किया था।" लेखक, हाथियों के पराक्रम का आगे भी उसी अलंकारमय भाषा में वर्णन करता है :—

"शब्दों की पतली डोर में उन दौड़ते हुए पहाड़ों के गुणो को कैसे पिरोया जा सकता है। उन्होंने विशाल इमारतों को हिला-हिलाकर नष्ट कर दिया और खेल ही खेल में मजबूत पेड़ों को जड़ से उखाड़ दिया। युद्ध और संघर्ष की बेला में, वे आदमी और घोड़े को ऊँचा उठा लेते थे और उनको हवा में फेंक देते थे"।[३]

पद्य

"वे आगे मंथर गति से बढ़ते हैं, परन्तु जब युद्ध करते हैं, तो शक्तिशाली भी उनके पैरों के नीचे "पिसे हुए सुरमे" की भाँति हो जाते हैं।"

हेमू की बृहत सेना —

१५०० युद्ध के हाथियों और सशस्त्र सेना के अग्रदल के अतिरिक्त "३० हजार अभ्यासी घुड़सवारों के साथ, जिसमें वे राजपूत और अफगान थे, जिन्होंने अनेक अवसरों पर अपने आक्रमणों द्वारा उनके दंभ और उद्दण्डता को बढ़ा दिया था, हेमू ने उत्तम व्यवस्था के साथ कूच किया।"[४] सैनिकों और

१—अबुल फजल : अकबरनामा : जिल्द २० पृ० ५९।

२—अनुवादक की टिप्पणी —"मैं समझता हूं कि 'कारनामा' के बाद 'इज़ाफत' गलत है। एक हस्तलेख में इस शब्द के बाद एक संयोजक है।"

३—अबुल फजल-अकबरनामा—पृ० ६०।

४—अबुल फजल—अकबरनामा—पृ० ६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अफगान अमीरों का उत्साहवर्धन करने के लिए हेमू उन्हें, जागीरों का उपहार दिया करता था और पराक्रमी योद्धाओं के लिए अपने खजानों का द्वार खोल दिया करता था।[1] उसकी अन्तिम घड़ी की तैयारियों, सुप्रसिद्ध हाथियों के वितरण, का अबुल फजल द्वारा भी इन शब्दों में सुन्दर वर्णन किया गया है।[2]

"........उन विशाल गजों की पहाड़ सी पीठों पर जो कवच (काजिस)[3] और सुरक्षा करने वाली वेशभूषा से सज्जित रहते थे बन्दूक धारी सिपाही और धनुषधारियो को बैठाया जाता था, और युद्ध के लिए तैयार किया जाता था। सब हाथियों पर ये युद्ध के सर्वांगीण-कवच थे, उनकी सूंड़ भालों और चाकुओं से युक्त थी और वे रणवीर और साहसी महावतों के सुपुर्द थे। प्रत्येक के लिए उसका स्थान निश्चित था।"

निम्नलिखित हाथियों के नामों का उल्लेख किया गया है, जो कि प्रमुख सेना नायकों के सुपुर्द निम्न प्रकार से किए गए थे:—

(१)	गालिब जंग	हसन खां फौजदार	के सुपुर्द
(२)	गज भंवर[4]	मैकल खां	,,
(३)	ज़ोर बनिया	इख्तियार खां	,,

(४) फौज मदार संग्राम खाँ के सुपुर्द

(५) काली वेग, जिस पर कई युद्धों में हेमू स्वयं आरूढ़ हुआ था, उस दिन कापन नामक महावत के सुपुर्द किया गया था। अबुल फजल के कथनानुसार हेमू ने अफगान नेताओं को प्रसन्न किया, जो युद्ध रूपी जंगल के शेर थे और शेर खाँ और सलीम खाँ और अन्य सभी व्यक्तियों के अन्तरंग मित्र थे, और उनको युद्ध के लिए उत्साहित किया।

हेमू स्वयं 'हवाई'[5] नामक हाथी पर सवार हुआ और खारामन्द जिले की ओर आया।

हेमू का सक्रिय होना—

हेमू के आगमन, उसकी शक्ति और साज-सामान का समाचार मुगल

१—अल-बदाऊनी मुन्तखाबात-उत-तवारीख—पृ० ७-८ बदाऊनी के अनुसार हेमू" ने सेना को तोपची सेना की हानि के लिए सांत्वना देने के लिए रुपया और उपहार बांटा। लेकिन उसकी आज्ञा से मिले धन को हजम न कर सकने के कारण अफगानों ने उसके पतन के लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी आरंभ कर दी।"

२—अबुल फज़ल-अकबरनामा : ६०। देखिए डा० शर्मा। मुगल शासन तथा राज्य : मुगल सेना में हाथियों का प्रयोग—पृ० १४६-१४८।

३ – ब्लोच मैन: प्लेट १४ वीं।

४—पाठ्य में "भवँर" जिसका अर्थ "जलावर्त" का होता है।

५—अल बदाऊनी-मुन्तखाबात-उत-तवारीख—पृष्ठ ७-८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिविर में दोवादीन, २३ वीं आबान, खुदाई महीना, तदुनुसार, वृहस्पतिवार २, मुहर्रम, ९६४, अर्थात ५ नवम्बर १५५६ ई०, को पहुँचा। मुगलों ने इसकी पुष्टि कर ली कि वह साहस से निकट आ रहा था।[1] उसने सबसे पूर्व एक बड़ी फौज एक कतार में कूच करती हुई, शादी खाँ काकड़ के नेतृत्व में, जिसने पहले ही दिल्ली का अधिकार करके अपने को प्रसिद्ध कर लिया था और जो सम्भल का निवासी था, आगे आगे भेज दी।

मुगल शिविर में घबड़ाहट—

जैसे ही मुगलों को हेमू की तैयारियों की विशालता का विश्वास हो गया, शाही सेवकों के हृदयों में, मूढ़मति गप्प हांकने वालों की क्रियाओ के कारण (जिनसे कोई सेना कभी मुक्त नहीं रहती, बल्कि एक प्रकार से ऐसो की भी सेनाएँ रहती हैं) व्यग्रता ने स्थान बना लिया।[2] मुगल अग्रदल में १० हजार सशस्त्र सेना थी, जिसमें ५ हजार अनुभवी सैनिक थे और वे हेमू के आगे बढ़े हुए सैन्य दल से टक्कर लेने के लिए तैयार हो गए। मुगलों की ओर, सिकन्दर खाँ और अनेक प्रौढ़ सैनिक दाहिने भाग में थे, जब कि बांया भाग अब्दुला खां के नेतृत्व में था, मध्य में अली कुली खाँ शैबानी, हुसेन कुली खां, शाह कुली बैहराम और कुछ अन्य युवा सेना नायक थे।

बैरम खां और अकबर, जो पानीपत से दस कोस दूर कर्नाल में थे, युद्ध की निकटता का समाचार पाकर शेष मुगल सेना के साथ आगे बढ़े।[3] वे पानीपत से ५ कोस दूर एक स्थान पर रुके, और वहाँ उन्होंने विचलित कर देने वाला यह समाचार सुना कि बहुत से मुगल पराजित हो चुके थे, परन्तु "लड़ाई तब भी तेजी से चालू थी।" अकबर और बैरम ने रणक्षेत्र की ओर बढ़ने के आदेश दे दिए। बैरम खां खान खानन पंक्तियों के समक्ष और विभागों के चारों ओर गया और उसने युद्ध के नियमों के बनाए रखने और बिन्दुओं की सुरक्षा के लिए उपाय किये।[4] उसने मुगलों को घेर कर एकत्रित किया और उपहार देकर और भावी पदोन्नति के आश्वासन (वायदे) देकर सेनाओं को क्रमबद्ध किया और उन्हें युद्ध करने को उत्तेजित किया। लेकिन जब तक कि अकबर और बैरम पानीपत से ५ कोस की दूरी पर स्थिर अपने शिविर से बाहर निकल सके उसी समय हेमू के प्राण घातक दुर्घटना में ग्रस्त होने का समाचार मिला और युद्ध मुगलों के पक्ष में समाप्त हुआ।

१—अबुल फजल-अकबरनामा—पृ० ६०।
२—अबुल फजल-अकबरनामा—पृ० ६२।
३—डा० आर्शीवादि लाल : मुगल साम्राज्य।
४—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द २-पृ०—६२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अल बदाऊनी भी उक्त वर्णन की पुष्टि करता है कि "मुहर्रम ९३४ के पवित्र मास के १० वें दिन (जो रजी-अशुरा भी कहलाता है) शुक्रवार की सुबह—

"मित्रों के लिए यह शोक का दिन नहीं है,
पर साथ ही शत्रु के लिए प्रसन्नता का दिन भी उतना ही कम है।"[1]

अग्रदल के मुगल अमीरों और हेमू के बीच युद्ध और हत्याकाण्ड आरम्भ हुआ। सम्राट और खान खानान उस दिन तीन विभागों में विभक्त थे और एक दूसरे को सहायता भेजते रहे, जब तक कि विजय की सूचना न मिल गई। अबुल फजल द्वारा आईन-ए अकबरी में आगे यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "यद्यपि अकबर और बैरम खां निकट ही थे, उन्होंने युद्ध में कोई भाग नहीं लिया।" मुगलों का अग्रदल अलीकुली खां के अधीन था, जिसकी पानीपत के पास हेमू से टक्कर हुई।[2]

दूसरे सेनानायकों में से जिन्होंने मुगलों की ओर से भाग लिया, निशापुर का मुहम्मद कासिम खां एक था, जिसने हेमू के साथ युद्ध होने पर खान जमन के अधीन हरावल या सेना के अग्रदल के नेता के रूप में कार्य किया था।[3] दूसरे नायक शाहकुली महराम-ए-बहरही ने, जो बैरम की सेवा में था, हेमू के विरुद्ध युद्ध में ख्याति प्राप्त की थी। यह शाह कुली ही था जिसने हेमू के हाथी पर आक्रमण किया, यद्यपि वह यह नहीं जानता था कि उसका विपक्षी कौन था।[4]

घातक दुर्घटना—

उस दुर्घटना का संक्षिप्त वर्णन, जो घातक और निर्णायक सिद्ध हुई, अबुल फजल द्वारा उज्जवल और स्पष्ट ढंग से इन शब्दों में किया गया है :—

"जब हेमू को पता चला कि कीर्ति के स्तम्भ अभी दूर है और कुछ अधिकारी आगे बढ़ आए हैं तो वह तेजी से उनकी ओर यह सोच कर बढ़ा कि यदि उसने उन व्यक्तियों को, जो चुनी हुई सेना थी, छिन्न-भिन्न कर दिया, तो शेष कार्य सुगम हो जाएगा।" हेमू की यह आशा बिल्कुल सही थी। यदि वह घातक दुर्घटना से ग्रस्त न होता, तो मध्य में उसका भीषण आक्रमण सफल होता, और मुगल सेना, जो पहले ही एक दूसरे से पाँच कोस की दूरी पर दो शिविरों में विभक्त थी, उसका सामना कर सकने योग्य न होती। यदि पानीपत में वह विजयी हो जाता तो अकबर और बैरम खाँ केवल भागने की ही शरण लेते।

१—अल-बदाऊनी : पृ० ७-८।
२—अबुल फजल-आईन-ए- अकबरी-जिल्द १ (ब्लाच मैन) पृ० ३५२।
३—अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी जिल्द १ (ब्लाच मैन) पृ० ३५३।
४—वही पृ० ३५९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेमू की विशाल सेना की प्रगति के प्रवाह को रोकना उनकी शक्ति से बाहर की बात थी। वास्तविक युद्ध में हेमू "प्रमुखत: अपने बहुत से बलशाली हाथियों पर भरोसा रखता था।" प्रत्येक पक्ष के वीर पुरुष उत्तम प्रयास करते थे और चिल्लाकर एक दूसरे पर झपटते थे। उन्होंने साहस और भक्ति के साथ सेवा की और यश कमाया।[१]

पद्य

"दोनों सेनाओं की ऐसी टक्कर हुई;
कि उन्होंने पानी से आग उत्पन्न कर दी।
आप कहेंगे कि हवा में केवल रक्त वर्णा तलवारें ही थीं;
उनका इस्पात पूर्णत: ठोस मणिकों जैसा हो गया था।"[२]

यद्यपि कुख्यात सेना के सेनानी स्थिरता और निष्ठा में असफल नहीं रहे, तब भी हाथियों के आक्रमण ने दाएँ और बाएं विभागों को हिला दिया। और यदि हेमू का अकस्मात पतन न हुआ होता, तो मध्य में किया गया धावा मुगल सेना के अग्रदल को तुरन्त दण्डित व धराशायी कर देता।

जब मुगल सेना-नायकों को विश्वास हो गया कि उनके घोड़े मदमाते हाथियों की बराबरी बिल्कुल नहीं कर सकते, तो उन्होंने चक्कर काटना आरंभ कर दिया, अर्थात बाहर निकलने के लिए चेष्टा की। अकबरनामा के अनुवादक ब्लाचमैन के अनुसार इससे शायद "पदाती युद्ध" का अर्थ था अर्थात मुगल घोड़ों की पीठों पर से उतर पड़े और हाथियों को घेर लेने की नीति बदल दी। घुड़-सवारों को पहले ही घोड़ों की काठियों पर से नीचे फेंक दिया गया था तत्पश्चात तेज व उग्र घोड़ों की छुरी जैसे खुरों द्वारा उनको भगा दिया गया था। ऐसे संकटमय समय में मुगलों ने धनुर्धारियों के एक स्वामिभक्त दल को चारों दिशाओं में भेज दिया, जिन्होंने महत्वपूर्ण सेवा की। अली कुली खां हाथियों के आक्रमण से एक खाई द्वारा सुरक्षित रह सका, जिसे वे पार न कर सके। "युद्ध के वीर इच्छुक और केन्द्र के सिंह-सदृश्य व्यक्ति एक छोटे से स्थान में संकुचित थे और आक्रमण करने के अवसर की खोज में स्थिर थे। उन्होंने ऐसी सहन शक्ति प्रदर्शित की कि केन्द्र की ओर से हाथी वापस चले गए। तत्पश्चात वे लोग शत्रु के पीछे निकल पड़े और अपने तीर चलाये और तलवारें घुमाई।" इसी समय जब कि युद्ध अपनी चरम सीमा पर था और मुगल घुटने टेकने ही वाले थे और एक निराश प्रतिरोध कर रहे थे, दुर्भाग्य का मारा हेमूं हवाई नाम के हाथी पर, जो उसके सबसे अच्छे हाथियों में से एक था, बडे गर्व से

१—अबुल फजल-अकबरनामा—जिल्द २-पृ० ६३।
२—बीजादा; माणिक से मिलता-जुलता एक पत्थर और अम्बर के आकर्षक गुण रखनेवाला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सवार हुआ और उसने एक ओर वीर तलवार चलाने वालों को तथा दूसरी ओर पंक्ति को भेदने वाले गाजियों के आक्रमण की ओर देखा।[१] हेमू ने अपने भीषण हाथियों को एकत्रित करके हर प्रकार का रण-कौशल जो उसकी शक्तिशाली सामर्थ्य में था, और हर प्रकार का साहसिक कार्य जो उसकी विप्लवकारी आत्मा में छिपा था, दिखाया।" अबुल फजल इस वीर की प्रशंसा में आगे कहता है—"उसने शक्तिशाली आक्रमण किए और बहुत से पराक्रमशील कार्य किए, तथा प्रभावशाली सेना के कई साहसी सैनिकों को हटा दिया। लेकिन दुर्घटना ने समय का पलड़ा पलट दिया।"[२]

दुर्घटना—

"अचानक संघर्ष के बीच में, दैवी कोप रूपी धनुष द्वारा छोड़ा गया तीर हेमू की आँख में लगा, और पुतली को छेदता हुआ उसके सिर के पीछे निकला।"[३] अलबदाऊनी के शब्दों में भी 'अचानक मृत्यु का तीर, जिसे कोई ढाल रोक नहीं सकती, उसकी कटाक्ष पूर्ण आँख में लगा जिससे खोपड़ी में से उसका 'दिमाग' बिल्कुल स्पष्टतः बाहर निकल आया, और वह मूर्छित हो गया।'[४] हेमू इस समय अपने पर्वत-सदृश हाथियों के साथ उस स्थल पर, जहा खान जमन टिका था, मध्य भाग का भार संभालने में रत था। इस समय जब विजय उसको प्राप्त हो सकती थी, वह अपनी घातक दुर्घटना में ग्रस्त हो गया; "तीर के आँख में घुस जाने पर, वह असहनीय पीड़ा के कारण अपने हौदे में गिर गया।......... ....अपने को पुनः उठाते हुए हेमू ने तीर को खींचा और नेत्र के छिद्र से बाहर निकल आने पर, जिसे उसने रूमाल में लपेट लिया, और अपनी कष्टमय दशा के होते हुए भी उसने अदम्य साहस के साथ उन थोड़े से व्यक्तियों को लेकर प्रयास करते हुए जो उसके निकट रह गए थे, शत्रु पंक्ति के बीच से वापसी बाध्य करने के लिए युद्ध करता रहा।"[५]

शादी खाँ और भगवान दास की मृत्यु—

शादी खाँ, जो हेमू के पक्ष का प्रमुख अफगान सेना-नायक था, लड़ता हुआ मारा गया और अबुलफजल के कथनानुसार भाग्यशाली मुगल सेना के दस तेज घोड़ों के पैरों के नीचे कुचला गया। भगवान दास को, जो उसके अग्रगण्य आदमियों में से एक था और जो रण क्षेत्र में अपनी वीरता के लिए

१—अबुल फजल-अकबरनामा—जिल्द २ पृ० ६४।
२—अबुल फजल : अकबरनामा-जिल्द २ : पृ० ६४।
३—वही—पृ० ६४।
४—अलबदाऊनी : मुन्तखाब-उत-तवारीख—पृ० सं०—८-९।
५—अबुलफजल : अकबरनामा जिल्द २ : पृ० ६४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विख्यात था, उसके (हेमू के) सामने ही टुकड़े-टुकड़े कर दिये गए ।[1] यह स्पष्ट नहीं है कि इन पराक्रमी योद्धाओं का अन्त उस अराजकता और भगदड़ के पश्चात हुआ जो हेमू के घातक पतन के पश्चात हुआ था । सेना में भगदड़ मच गई, और संहार और हत्याकाण्ड आरम्भ हो गया । इस दंगे में ऐसी मृत्युओं की सम्भावना कहीं अधिक है । किसी भी दशा में, प्रमुख अफगान योद्धा हेमू की ओर से लड़ता हुआ मारा गया । साधारण व्यक्तियों के हृदय बैठ गए और वे भाग खड़े हुए ।

हेमू का बन्दी होना—

स्वामी को हौदे में घायल पड़ा देखकर हेमू के हाथी हवाई के महावत ने अपने को किंकर्तव्य-विमूढ़ पाया । हेमू के बन्दी बनाए जाने के विभिन्न वर्णन किए गए हैं—

अल-बदाऊनी के अनुसार—"शाह कुली खाँ महराम हेमू के हाथी से मिला था और उस हाथी के महावत ने उससे कहा, 'मुझे मत मारो । मेरे हाथी पर हेमू सवार है ।' इसलिए वे उसे उसी अवस्था में शिविर में ले आए ।[2]"

अबुल फजल के शब्दों में "उसी समय शाह कुली खाँ और कुछ वीर व्यक्ति उस हाथी के पास आए जिस पर हेमू सवार था । वह नहीं जानता था कि हेमू हाथी पर था, और उसने महावत को इसलिए मार डालना चाहा ताकि वह हाथी को अपनी लूट का भाग बना ले । बेचारे महावत ने, जिसके पास न तो राजभक्ति का कवच था और न साहस का जिरहबख्तर, अपनी जान जाने के भय से अपने स्वामी की ओर संकेत कर दिया । जब शाह कुली खां ने अपने महान सौभाग्य के बारे में सुना, तो उसने अपने नक्षत्रों को आशीर्वाद दिया और प्रसन्नता से टोपी को आकाश की ओर उछाल दिया । उसने महावत को आश्रय का आश्वासन दिया और उसे राज पुरस्कार दिलाने की आशा दिलाई तब उसने उसको तथा कुछ अन्य हाथियों को अलग किया और युद्ध क्षेत्र को छोड़ दिया" ।[3]

अबुल फजल ने उस हाथी के महावत द्वारा किए गए कार्य का तथा हाथी व महावत के महत्व का जिसकी कल्पना हेमू न कर सका, विस्तृत वर्णन इन शब्दों में किया है:—

"विमूढ़ता के नशे में, वह (हेमू) यह न समझ सका कि वह, जो हाथी के महावत पर आश्रित है, उस पर निश्चय रूप से प्रवृत्त हो जाएगा,

---

१—अबुल फजल-अकबरनामा—पृ० ६४ ।
२—अल बदाऊनी : मुन्तखबावात—उत—तवारीख । पृ० ८-९ ।
३—अबुल फजल-अकबरनामा । जिल्द—२—पृ० ६५ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जिसका भरोसा हाथी मे है। तब फिर उसकी उच्चता कैसे न मानी जाए, जिसे हाथी के सृजनहार का विश्वास प्राप्त है और उसके विरुद्ध हाथियों को सहायतार्थ बुलाकर क्या प्रभाव प्राप्त किया जा सकता है" ?[१]

यह भारतीय युद्ध पद्धति के, जिसमें हाथी एक, प्रमुख भाग लेते थे, सिद्धान्तों के पूर्णतः अनुकूल था। बहुत से शूरवीर हाथियों की तरंगों का शिकार हो गए। महत्वपूर्ण अवसर पर हाथियों की भगदड़ से उत्तम सेनाओं का नाश हो गया; केवल हाथियों के दोष के कारण कई सम्पूर्ण साम्राज्य हाथ से जाते रहे। हेमू इसका अपवाद न था। घातक घाव के कारण उसका हौदे में गिरना, सेना की भगदड़ के लिए एक संकेत मात्र था। उसके दो धुरंधर सेना नायक शादी खां और भगवानदास का भी गौरव मय अन्त हुआ। उसके अपने निकट सम्बन्धी भांजे रमैया और भतीजे महीपाल विषद तथा संकटकालीन परिस्थिति पर काबू न पा सके। वे सब भाग खड़े हुए। विशाल खजाने के साथ वे अलवर लौट गए और अपने अनिष्ट की प्रतीक्षा करने लगे। अफगान शूरवीर भी देश के विभिन्न भागों में अपने गढ़ों की ओर भाग निकले। जैसा कि आगे की घटनाओं से ज्ञात होगा, अकबर को इन शेर-दिल अफगानों के विरुद्ध ५ से ६ वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा। अलवर, रणथंभौर, ग्वालियर, चुनार और पूर्व में कुछ अन्य स्थान तथा गढ़ अदली और हेमू के स्वामी भक्त सेवकों के अधिकार में बने रहे, और मुगलों द्वारा उन पर एक-एक करके ही अधिकार किया जा सका।

१—अबुल फजल-अकबरनामा—जिल्द २—पृ० ६५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय—८

हेमू का शहीद होना

हेमू के हाथी का महावत, शत्रुओं का भाला सामने देखकर, प्राण जाने के भय से, हाथी को, जहाँ शाह कुली खां ने निर्दिष्ट किया, वहीं, हांक ले जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। जैसे ही महावत ने हाथी को अन्य हाथियों से अलग किया, उसे शत्रुओं के घोड़ों के एक दल द्वारा घेर लिया गया, और पानीपत से ५ मील दूर अकबर के शिविर में ले जाया गया। वहाँ क्या घटित हुआ इसका समकालीन वृतान्तकारों द्वारा विविध प्रकार से वर्णन किया गया है।

हेमू की हत्या का सबसे अधिक प्रायः उद्धृतकथन अल-बदाऊनी का, है जो कहता है : [1]

"............और शेख गदा-ए-कम्बोह तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियों ने सम्राट से कहा—'क्योंकि महामान्य का धर्मद्रोहियों के विरुद्ध यह प्रथम युद्ध है, इसलिए आपको इस नास्तिक के अपनी तलवार भोंकनी ही चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के कार्य का प्रतिफल महान होगा।"

लेकिन सम्राट ने उत्तर दिया:—"मैं अब इस पर प्रहार क्यों करूँ, क्योंकि वह तो पहले ही मृत-प्रायः है? यदि उसमें धड़कन और क्रियाशीलता शेष हो, तो मैं ऐसा करूँगा।"

इसके पश्चात् बैरम खाँ ने स्वयं अपनी तलवार हेमू के शरीर में भोंक दी, और गदा-ए-शेख तथा अन्य व्यक्तियों ने, जो वहाँ उपस्थित थे, उसका अनुसरण किया। बदाऊनी आगे कहता है—"इस प्रकार यह उक्ति पूर्ण हुई—'उसको मारने से क्या लाभ, जो जलाया जाने वाला हो?"[2] और उन्हें उस तिथि के लिए निम्नलिखित स्मरण-शक्तिवर्द्धक-पत्र उचित लगा—

"यदि छल, धोखे और कपट से महान् दिल्ली,
विधि के लेख द्वारा, हिन्दू हेमू के हाथ आ गई,
तो मोहम्मद अकबर ने, वह शाह जिसकी कीर्ति आकाश तक पहुँची,
ईश्वर की सहायता से, उस काली सूरत वाले हिन्दू हेमू को बंदी बना लिया।

१—अल-बदाऊनी : मुन्तखाब-उत-तवारीख—पृ० ९-१२।
२—अर्थात—नरक जाने वाला हो-तुलना कीजिए पाठ् पृ० ५१-से-६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्ति रूपी कलम से स्थायी लेख-पत्र सृजनकर्ता के लेख ने
उस दिवस के संबंध में लिखा : उसने हिंदू हेमू को पकड़ लिया।"[१]

इतिहासकारों द्वारा इस कथा को, अधिकृत कहा गया है, जो अकबर के दरबार के मुसाहिबों द्वारा आविष्कृत कही जाती है।[२] अहमद यादगार और डच लेखक वानदेन ब्रौके, जिसने अपनी सूचना एक "साम्राज्य के विश्वस्त वृतान्त" से ली थी, के स्पष्ट कथनों द्वारा, इसी का खंडन भी किया गया, यह इस प्रकार है:—

"हेमू के सैनिक.......अपने सेनापति को अकेला छोड़कर, विभिन्न दिशाओं को चले गए, जिससे मुगलों को समस्त युद्ध के सामान तथा हाथियों पर अधिकार मिल गया। और हेमू, को जो युद्ध के बीच से, आंख में एक तीर लग जाने के कारण, भागने को वाध्य था लेकिन शाह कुली महराम-ए- बहारमी द्वारा पकड़े जाने पर और शिविर में वापस लाये जाने पर, अकबर के सामने प्रस्तुत किया गया, जो कि वहाँ पर हेमू तथा पठानों की पराजय का समाचार जानते ही शीघ्रता से आ गया था। अकबर ने, अली कुली खां की प्रार्थना पर, एक ऐसे कार्य द्वारा जो एक युवराज की शान के विरुद्ध था, खड्ग से अध्यर्पित बंदी की गर्दन को अलग कर दिया। और सिर को दिल्ली के द्वार पर लटका देने का आदेश दिया।"[३]

१—शब्द-"बिग्रिफत हेमू-राँ"-९६४ तिथि प्रकट करते है।
हेमू-रां के अन्तिम अनुस्वार (राँ) के उच्चारण का लोप हो जाता है जैसे "जमीदारान के लिए "जमीनदारान" में : पाठ-पृ० ५१::७।

२—विन्सेट स्मिथ : मुगल-ए-आजम अकबर : पृ० ९६।
"१४ वर्ष का बालक, बैरम खां, जिसका, आज्ञापालन की आशा रखने का अधिकार था, के निर्देशों का पालन करने के लिए उचित रूप से दोषी नहीं ठहराया जा सकता; न यह समझ लेने का उचित कारण ही है कि उस समय बालक अपने अधिकारियों से अधिक सन्देह कर्ता था। अधिकृत कथा, के पहले ही, एक अधमरे असहाय वंदी को मारने के लिए अनिच्छा की एक महान भावना ने, उसको अपने अभिभावक के निर्देशों का पालन करने को मना कर देने को वाध्य किया, ऐसा दरबारी मुसाहिबों का वाद का आविष्कार प्रतीत होता है।"

३—रायल एशियाटिक सोसाइटी का जनरल (पत्रिका) : १९१६ : पृ० ५२७-५३५ :
The death of Hemu : De leat, de Imperio Magni sive India Vera, Lugduni Batavorun, Eljevir, १६३१,
पृ० १७४-१८१। अलग पृष्ठ संख्या वाले दो विषय हैं; दोनों में तिथि १६३१ ही है। अनुच्छेद Vanden Broecke द्वारा लिखित Fragmentum Indicae Historioe में से है। (स्मिथ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद) (De laet ने Vanden Broecke के उच्च (पाठ) से अनुवादित किया है)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहमद यादगार द्वारा किया गया वर्णन कुछ सीमा तक "डच" लेखक से मिलता है, लेकिन शेष वर्णनों से बहुत भिन्न है। वह कहता है—

"ऐसा हुआ कि, सर्वशक्तिमान के विधान से, हेमू के मस्तक में एक तीर लगा। उसने अपने हाथी के महावत से हाथी को रणक्षेत्र से बाहर ले चलने को कहा............इस आकस्मिक दुर्घटना का समाचार जब शाह कुली बेग से बताया गया, तो वह हाथी के पास आया, और उस हाथी को बैरम खां के सामने उपस्थित किया गया। बैरम खाँ ने अपने को विश्रामावस्था में लिटाते हुए, और धन्यवाद देते हुए, हेमू को हाथी से नीचे उतारा, तत्पश्चात उसके हाथ बांध दिये, उसको भाग्यशाली युवक राजकुमार के सामने ले गया और कहा—"यह हमारी प्रथम सफलता है, इसलिए महामान्य अपने पुनीत कर से इस धर्म-द्रोही को तलवार द्वारा मार डालें।" फिर युवराज ने उसे मार डाला और उसके सिर को उसके मलीन शरीर से अलग कर दिया। (नवम्बर ५, सन् १५५६ ई०)"।[1]

अकबर के पुत्र और उत्तराधिकारी, जहांगीर के संस्मरणों द्वारा इस घटना का एक और रुचिकर वर्णन प्राप्त हुआ है। उसमें लिखा है :—

"कई व्यक्तियों ने हेमू को, वह जैसी दशा में था वैसा ही, बादशाह (अकबर) के पास तुरन्त भेज दिया। बैरम खां ने कहा कि यह उचित होगा यदि बादशाह स्वयं अपने हाथ से धर्मद्रोही का तलवार से हनन करें, ताकि "गाजी" (धर्मवीर) की उपाधि प्राप्त करके उसका प्रयोग शाही फारगनों में कर सके। बादशाह ने उत्तर दिया, "मैंने इससे पहले ही उसके टुकड़े कर दिए हैं" और समझाया, "एक दिन काबुल में, मैं ख्वाजा अब्दुस-समद शीरी-कलाम की उपस्थिति में एक चित्र की नकल कर रहा था, जब कि मेरी तूलिका से एक आकृति बनी, जिसके अंश एक दूसरे से पृथक और विभक्त थे। उस समय जो निकट थे उनमें से एक ने पूछा "यह किसका चित्र है? "मेरे मुंह से निकल गया कि "यह हेमू जैसा है।"

"उसके (हेमू के) खून से अपने हाथ को अपवित्र न करके, उसने अपने सैनिकों में से एक से उसका सिर काटने को कहा।"[2]

कथा का यह स्वरूप, जहांगीर ने दरबार में लोगों से सुना होगा, और इस प्रकार अपनी जीवनी में उसे सम्मिलित करने का अवसर प्राप्त किया। जैसा कि विन्सेंट स्मिथ कहता है यह आश्चर्यजनक है कि युवराज (जहांगीर)

१—अहमद यादगार : दी तारीख-ए दाऊदी- (ईलियट और डासन) जिल्द ५ – पृ० ६५-६६ और १ ले नोट का भाग। अल बदानी के अनुसार हेमू का वध १३-११-५६ को हुआ था।

२—जहाँगीरनामा : अंग्रेजी अनुवाद : बेवरिज और रोजर्स।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा किया गया वर्णन, जिसकी सत्यता पर संदेह नहीं किया जा सकता, अबुल फजल द्वारा किए गए वर्णन से भिन्न है। जब हेमू अकबर के सामने लाया गया उस समय जो कुछ हुआ उसका सबसे अधिक ब्यौरेवार वर्णन अकबरनामे से उपलब्ध है—

"............जब कि शूरवीरों में से प्रत्येक को उपस्थित किया जा रहा रहा था और वे सांसारिक और आध्यात्मिक पुरस्कार पा रहे थे, शाह कुली खां बंदी हेमू को वहां लाया। यद्यति उन्होंने उससे प्रश्न किये, उसने अज्ञानता (जहालत) के कारण उत्तर नहीं दिया। शायद वह बोल सकने में असमर्थ था या वह लज्जा से अक्रांत था और कुछ कहने के लिए अनमना था। बैरम खाँ खान खाना ने महामान्य शाहंशाह से इस "राजद्रोह की राशि" को अपने पवित्र हाथ से मारने की और एक पवित्र युद्ध द्वारा विशेषता प्राप्त करने की प्रार्थना की............।[१]

अबुल फजल के अनुसार अकबर ने हेमू की हत्या करने में बड़ी अनिच्छा प्रकट की; जितना ही राजभक्तों ने उससे आग्रह और अनुरोध किया वह उतना ही उसके प्रतिकूल हो गया। बालक सम्राट को "अपने मस्तिष्क के पाक दामन पर ऐसी धूल के धब्बे न पड़ने देने का" निश्चय करने का भी श्रेय दिया गया है, और यदि ऐसी घटना हो भी, "तो वह अपनी तलवार को ऐसे मरणासन्न व अपवित्र शत्रु के रक्त से कैसे रंजित करेगा ?" यह ठीक ऐसा ही वर्णन है जो एक खुशामदी चाटुकार दरबारी लेखक की लेखनी से ही फूट सकता है; जैसा कि विसेंट स्मिथ द्वारा भी उल्लिखित है। उसके अनुसार "पानीपत के युद्ध के समय, अकबर पुनर्जन्म न लिया हुआ बालक था। जो मनोरंजन में मग्न था, और अपने परिपक्व-पुरुषत्व की भावनाओं से युक्त न रहा होगा। अतः उसमें अपने शिक्षक-अभिभावक के आदेशों का पालन न करने का साहस न था और इसीलिए तलवार से प्रहार किया। फिर "गाजी" की उपाधि धारण करने का मोह और आकर्षण भी बालक सम्राट द्वारा रोकने के लिए अत्यधिक उत्तेजक था।[२]

इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि अकबर ने अपने शासन के प्रथम वर्ष से गाजी की उपाधि धारण कर ली थी। इस बात पर, कि यह उसके द्वारा अपने हिंदू प्रतिद्वंदी हेमू का हनन करने पर धारण नहीं की गई थी, संदेह करने का कोई कारण नहीं है। अपनी अधिकृत जीवनी में जहाँगीर द्वारा किये गए वर्णन में यह स्पष्टतः अंकित है कि अकबर को उपाधि प्राप्त करने के लिए ऐसा करने की सम्मति दी गई, जिससे उसका प्रयोग शाही फरमानों पर हो सके।

१—अबुलफजल-अकबरनामा—जिल्द २—पृ० ७१-७२।
२—विसेंट स्मिथ: अकबर : पृ० ३९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि अकबर उस उपाधि का प्रयोग करने में गर्व समझता था, और उसको कोई मनसंताप नहीं था, इससे यह स्पष्ट होता है कि उसने अपने शिक्षक-अभिभावक के आदेशों का पालन किया, और जैसा इतिहासकार फिरिश्ता द्वारा उल्लिखित है या तो उसने तलवार से प्रहार किया और या तलवार से केवल हेमू का सिर छू दिया।

घटना के बारे में दिए गए विविध उल्लेख बहुत से सूक्ष्म विवरणों में एक-दुसरे से विस्तृत रूप से भिन्न है। मुख्य प्रश्न निस्संदेह रूप से केवल एक विषय को निश्चित करता है—अकबर ने शिक्षक-अभिभावक की आज्ञा मानी अथवा नहीं ? क्या बैरम खां के आदेशों का पालन करते समय उसने कुछ दुविधाएँ अनुभव की ? क्या उसने अपने सेवकों में से किसी एक को कार्य सम्पद्य करने को कहा या स्वयं (इसके लिए) कष्ट उठाया ? अबुल फजल का रोचक व अलंकारमय वर्णन; बदाऊनी का सरल उल्लेख तथा अहमद यादगार और डीलायत के पूर्ण रूप से विरोधी वर्णन; आज पाठक को भ्रम में डाल देते हैं। विविध वर्णनों का शांत भाव से अध्ययन करने पर, अकबर की आयु को विचार में रखने हुए और वे परिस्थितियाँ, जिनमें उसे शिक्षा और आदेश दिए जा रहे थे, एक व्यक्ति को इस परिणाम पर पहुँचाती है कि फिरिश्ता द्वारा किया गया हेमू की आहुति का निम्नांकित वर्णन पूर्वगामी वर्णनों से कहीं अधिक वास्तविक लगता है।

"जब हेमू को उपस्थित किया गया, बैरम खाँ ने बादशाह से स्वयं अपने हाथ से धर्मद्रोही को मारकर एक प्रशंसा योग्य काम करने के लिए प्रस्ताव किया। अकबर ने, अपने वजीर की इच्छा पूर्ति करने के लिए, अपनी तलवार खींची, और बन्दी का सिर छूकर "गाजी"[1] के विशिष्ट नाम का पात्र बन गया, जब कि बैरम खां ने अपनी निजी कटार खींचकर, एक ही प्रहार से हेमू के सिर को उसके धड़ से विलग कर दिया।"[2]

धड़ से सिर के अलग होने पर, हेमू के सिर को, अल्पज्ञों को शिक्षा देने के लिए काबुल भेज दिया गया और उसका धड़ दिल्ली ले जाया गया और मुगलों के शत्रुओं को चेतावनी के रूप में फांसी की टिकटी पर लटका दिया गया। अल-बदाऊनी के मतानुसार यह बलि १३ नवम्बर १५५६ ई० को हुई थी।

युद्ध की लूट का माल—

विजयी मुगल सेना द्वारा, जिसने तुरन्त दिल्ली नगर की ओर कूच किया, "लूट के माल के रूप में लगभग १५०० हाथी, और इतनी राशि में

१—इसका अर्थ है, वह व्यक्ति जिसे, युद्ध में अपने कार्यों द्वारा, धर्मद्रोहियों को मारा हो और सच्चे धर्म का प्रचार किया हो।

२—फिरिश्ता : ब्रिग्स का अंगरेजी अनुवाद : जिल्द २ : पृ० १८४-१९०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोषागार एवं भण्डार की, जिसे कल्पना भी सोचने में शक्तिहीन है, हस्तगत किया गया ।"[1] पानीपत से लेकर दिल्ली तक मार्ग में कोई विरोध नहीं हुआ। अबुल फ़जल के शब्दों में—"दुर्भाग्यशाली शत्रु ने तुरन्त अपनी पीठें दिखा दी और भागने में भी अपनी सुरक्षा समझी। साहस रूपी जंगल के शेरों ने तीरों तथा युद्ध के भालों के प्रहारों द्वारा महावतों को उनके पहाड़ों (हाथियों) की चोटियों पर से सिर के बल नीचे गिरा दिया, और पर्वत-सदृश गजों को एक तूफान की भाँति (भाग) जाने के लिए बाध्य कर दिया।"[2] विजयी मुगल सैनिक भागनेवालों की अविवेकपूर्ण हत्या में और लूट का माल एकत्र करने में रत हो गए। उन सैकड़ों और हजारों सैनिकों के अतिरिक्त जो रणक्षेत्र से भागते समय घोड़ों और हाथियों द्वारा कुचल गए होंगे, रणभूमि में लगभग ५००० व्यक्ति नष्ट होगए। सिकंदर खाँ उजबेग को एक सैन्यदल के साथ भागनेवालों का पीछा करने के लिए भेजा गया। उसे विशाल लूट का माल मिला। मुगल सेना तत्पश्चात् शीघ्र ही दिल्ली में प्रविष्ट हो गई और अकबर भी पानीपत से आ पहुँचा। उसने "व्याख्यान-मंच से एक बार फिर से खुतबा घोषित कराया; वहाँ वह एक मास ठहरा। और प्रतिभाशाली अमीरों को आगरा, सम्भल और अन्य नगरों के सूबेदार के रूप में नियुक्त किया गया।"[3] मुगल इतिहासकार के कथनानुसार "नगर की आम जनता ने बहुत बड़ी शान्ति पाकर उसका स्वागत किया, क्योंकि उन्हें आशा थी कि मुगल सम्राट की वापिसी" दिल्ली को और अधिक विध्वंसक युद्ध और परिणामस्वरूपहोने वाले विनाश से बचा सकेगी।

१—अल-बदाऊनी : मुन्तखाब-उत्-तवारीख : पृ० ९-१२.
२—अबुल-फजल : अकबरनामा —जिल्द-२-७१ ७२.
३—अल-बदाऊनी : मुन्तखाब-उत्-तवारीख : पृ० ११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय—६

परिणाम व प्रतिकार

दिल्ली पहुँचकर, अकबर ने बैरम खाँ के परिवार के गुमाश्ते, पीर मुहम्मद खाँ को मेवत की ओर भेजा, जहाँ हेमू का खजाना जमा किया हुआ कहा जाता था। उस स्थान का शासक हाजी खाँ था और हेमू के कुटुम्बियों ने वहीं, अलवर में, शरण ग्रहण की थी। अकबर के शासन के प्रथम वर्ष की समाप्ति के पूर्व अर्थात् जनवरी १५५७ ई० में, पीर मुहम्मद ने "हेमू के जन्म-स्थान देवली सजरी (या सचारी) तक अलवर की सरकार पर अधिकार कर लिया।"

हेमू के वृद्ध पिता को फांसी—

हेमू के वृद्ध पिता राय पूरन मल, जो ८० वर्ष के थे, पकड़ लिए गए और मौलाना (पीर मुहम्मद) के सामने लाये गए। वहाँ उनसे इस्लाम धर्म को अंगीकार करने को या मरने के लिए प्रस्तुत होने को कहा गया। इसका उन्होंने उत्तर दिया—[1]

"८० वर्ष तक मैंने अपने भगवान की अपने धर्म के अनुसार उपासना की है। तो मैं अब अपने जीवन की सांझ होने पर उसे क्यों बदल दूँ, और वह भी केवल जीवन के भय से और बिना यह समझे कि वह तुम्हारी पूजा में तुम्हें कैसे बाधा पहुँचाती है।" पीर मुसम्मद ने ऐसे सम्मानपूर्ण उत्तर पर कोई ध्यान नहीं दिया और अस्सी वर्ष के वृद्ध और दुर्वल व्यक्ति को तुरन्त फाँसी पर लटका दिया। अबुल फजल के मतानुसार "पीर मुहम्मद ने उसे मार डाला। उसका लूट का माल एकत्रित करके वह अकबर के पास लौट आया।"[2]

महारानी का बच निकलना—

अल बदाऊनी, हेमू की पत्नी के, जिसको मुगल सेनानायक बन्दी न बना सके, के साहस पूर्ण भाग निकलने का एक विषद वर्णन छोड़ गया है—

"और, पीर मुहम्मद खाँ और मेहदी कासिम खां का संबंधी हुसैन खाँ और कई अन्य सेनानायकों ने, मुगल सईद खाँ के साथ मिलकर दिल्ली से भागने

१—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द-२ पृ० ७१-७२।
२—अकबरनामा से सवानीह : ब्लौचमैन : आईन-ए-अकबरी : पृ० ३५९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वालों का पीछा किया, और अलवर से होते हुए वे हेमू की पत्नी तक पहुँचे, जिसके साथ सोने से लदे हाथी थे। महारानी ने स्वयं तो कुवा जिले और वैजवाड़ा में पहाड़ और जंगल का सहारा लिया और सोना पीछे छोड़ दिया, जिसका बहुत बड़ा भाग बैजवाड़ा प्रदेश के गँवारों के हाथ लगा। फिर भी राजभवतों की सेना के हाथ जो भाग लगा वह इतना बड़ा था कि उन्होंने ढाल भर-भर के उसे बांट दिया और "निसार-ए-जर," सोने के टुकड़ों का बिखेरना तिथि (९६४) प्रकट करता हुआ पाया गया। और सड़क पर, जिससे महारानी गई, सोने की सिल्ली व सिक्कों की इतनी बड़ी संख्या गिरी थी, कि बहुत वर्षों तक यात्रियों और पथिकों को प्राप्त होते रहे।"[1]

हाजी खाँ का भागना—हेमू के पिता से निपटकर और हेमू की पत्नी के बच निकलने को रोकने में असफल होने पर, मुगलों ने हाजी खां को, जो मेवत का सूबेदार था, पकड़ना चाहा। उसने बुद्धिमत्ता और सेना एकत्रित करने की कुशलता में पहले ही अपने को प्रसिद्ध कर लिया था और उसने हेमू के साथ साथ दिल्ली के संग्राम में विजय प्राप्त की। लेकिन इस बार वह विजयी सेना की शक्ति से डर गया और उसके पहुंचने से पूर्व ही भाग गया।[2] उसके भाग जाने के फलस्वरूप मेवत की सम्पूर्ण सरकार मुगलों के अधिकार में आ गई। हाजी खां दक्षिण-पश्चिम की ओर गया और मेवाड़ में प्रविष्ट हुआ। हाजी खां और राणा उदयसिंह के मध्य एक युद्ध हुआ। वह और उसका वकील मुजफ्फर खां शेरवानी वीरता से लड़े और उन्होंने राणा को हरा दिया। फलस्वरूप अजमेर, नागौर और समीपवर्ती प्रदेश हाजी ख़ां के हाथ आ गये। बाद में हाजी खां बसावरी ने मुगलों और अदली तथा हेमू के एक अन्य गुलाम संग्राम खां, के बीच राजीनामा कराने में बहुत विशिष्ट भाग लिया। लेकिन तत्पश्चात् शीघ्र ही दोनों गुजरात में जाकर, जब[3] कि बैरम खाँ ने भी पदच्युत व निष्काषण के पश्चात वहाँ शरण ली तो, मूसा खां फौलादी और अलवर के हाजी खाँ ने उसका पाटन में स्वागत किया। वहीं पर मुबारक खां अफगान द्वारा बैरम खाँ की हत्या की गई थी। हाजी खां कुछ समय के लिए मुगल-दरबार में गया लेकिन पुनः भाग खड़ा हुआ। वह ९७२ में आसफ खां के विरुद्ध गोधा में लड़ा और मारा गया।

सिकन्दर सूर का पीछा—

जब कि हेमू अपनी विशिष्ट चेष्टा द्वारा दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया था और मुगल उसको नष्ट करने की तैयारी में लगे थे, खिज्र ख्वाजा को सिकंदर का, जिससे उन्हें पीछे से भय हो सकता था, विरोध करने के लिए नियुक्त किया था। परन्तु खेद है। हेमू और सिकन्दर के बीच कोई मिली जुली

१—अल-बदाऊनी : मुन्तखाब-उत्-तवारीख : पृ० १०
२—अबुल-फ़जल-अकबरनामा : जिल्द—२ पृ० ७१-७२।
३—अल-बदाऊनी : मुन्तखाब-उत-तवारीख : २८, ४०, ६५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्रिया और कोई सहयोग न था, जिसका परिणाम यह हुआ कि मुगल एक के ऊपर ध्यान केन्द्रित कर सके और दूसरे को रोके रहे। जैसे ही दूसरे मुगल सेनानायक स्वतंत्र हो सके, उनको लाहौर भेज दिया गया; लेकिन इसी बीच मुल्ला अबदुल्ला सुल्तानपुरी ने एक दोहरा कार्य किया। एक ओर तो उसने अफगानों से "शेख़-ए-इस्लाम" की उपाधि और दूसरी ओर मुगलों से "मखदुम-उल-मुल्क" की उपाधि प्राप्त की।[1] उसने पंजाब में कहा कि वह मुगलों की सेवा में है और सिकन्दर को पहाड़ियों से बाहर निकालने के लिए आमंत्रित किया और राज्य-कर की वसूली के लिए निकला। खिज्र खां सिकन्दर का प्रतिरोध करने के लिए लाहौर नगर से चला। जब वह चामयारी शहर में पहुँचा तो सिकंदर ने एक बृहत् सेना के साथ उसका सामना करने के लिए कूच किया। खिज् खां का अग्रदल, जिसमें २००० चुने हुए व्यक्ति थे, पराजित हुआ और वह वापस लाहौर चला गया। वस्तुतः यही वह समय था जब कि पानीपत का निर्णायक युद्ध लड़ा गया। मुगल सेनाएं दिल्ली पहुँचीं ही थी कि दिल्ली में समाचार प्राप्त हुआ कि लाहौर से २० मील के भीतर एक स्थान चामयारी की सीमाओं पर सिकन्दर के सम्मुख खिज् खां पराजित हो गया था और लाहौर पहुँच गया था। "महामान्य (अकबर) ने जालंधर के लिए प्रस्थान किया ही था कि सिकन्दर ने एक बार फिर शिवालिक पहाड़ियों का आश्रय लिया, तब पीछा करती हुई शाही सेना दिसूहा और दाहमीरी तक प्रविष्ट हो गई"।[2]

यदि पानीपत में उनकी हार हो गई होती तो सिकंदर की ओर से मुगलों को जो भय था वह घातक होता। वह काबुल को उनकी वापिसी के मार्ग को काट देता और हिन्दुस्तान की सीमा से आगे जो स्त्रियां थी वह सरहिंद के मुगलों से कभी एक न हो पाती। लेकिन पानीपत में हेमू की हार ने अफगानों की मृत्यु का घण्टा बजा दिया। यद्यपि सिकंदर कुछ समय तक कड़ा प्रतिरोध करता रहा और अपने को मनकोट के दुर्ग में बन्द रखा, फिर भी मुगलों ने अब कूटनीति का सहारा लिया और अफगान सामन्तों से मिलकर सैनिकों को कुछ रुपया देकर नौकरी से अलग करके उनके प्रतिरोध को कम करना आरम्भ किया। जब कि घेरा डालने का कार्य चल रहा था। सिकन्दर के अमीरो ने एक-एक करके उसका साथ छोड़ना आरम्भ किया; और मुगल दरबार में उपस्थित हो गए। सैयद महमूद बड़हा, गाजी खां सूर के साथ, बालक सम्राट के पास आया और २२ वीं रमजान ९६४, तदनुसार······· १५५८ ई० को हाथी भेंट किए। वहां दो सेनानायक शान्ति प्रस्ताव भी लाए,

१—अबुल फजल—अकबरनामा : जिल्द—२ पृ० ७३।
२—अल-बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख-पृ० ११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और सिकन्दर को अफगानों से खान जमन द्वारा विजित कर लेने पर जौनपुर की जागीर की भेंट अर्पित की गई। लेकिन अफगानों के गढ़ पर, जो उन्होंने हेमू के मंत्रित्व में सुदृढ़ किए थे, अधिकार करना एक कठिन कार्य था, जैसा कि अकबर के शासन का प्रारम्भिक इतिहास दर्शाएगा।

लखनौ का युद्ध—

खान जमन अफगानों का दमन करने के लिए पूर्व की ओर बढ़ा। हसन खां बचगोती ने २० हजार व्यक्तियों के साथ उसका सामना किया; लेकिन खां जमन और बहादुर खां, संख्या में कम होते हुए भी, लखनौ में अफगानों को हराने में सफल हुए।

जौनपुर—

जौनपुर में अगला संघर्ष बंगाली अफगान से हुआ जो अपने को सुल्तान बहादुर कहता था और जिसने सिक्के जारी किए थे तथा बंगाल में अपने नाम में ख़ुतबा पढ़वाया। पहले मुगल फौजों की जौनपुर में बुरी हार हुई, लेकिन खान जमन ने उत्तम-युक्ति से पराजय को विजय में बदल दिया। यह विजय बहुत महत्वपूर्ण थी क्योंकि इससे एक बार पुनः मुगलों के लिए पूर्वी प्रदेशों के द्वार खुल गए। बहुत सा-लूट का माल तथा विशाल भंडार खान जमन के हाथ लगा जो उस समय अन्य आक्रमणों के लिए लैस था।[1]

ग्वालियर—

वर्ष ९६६ तक अर्थात् १५५८ में, ग्वालियर अदली और हेमू के एक दास बुहेल[2] खां के अधिकार में बना रहा। मुगल सेनाओं ने उसे घेर लिया, उसने दया की भीख मांगी और चाबियां सौप दी। इस प्रकार पानीपत के युद्ध के दो वर्ष पश्चात् १५५८ ई० में ग्वालियर का दुर्ग अकबर के अधिकार में आ गया।

रणथंभौर—

यह दुर्ग, अदली और हेमू के एक दास संग्राम खाँ[3] के अधिकार में बना रहा। लेकिन १५५८ ई० में मुगलों द्वारा उस पर अधिकार किए जाने के भय से उसने इसे राजा सुर्जन हाड़ा को बेच दिया। कुछ समय पूर्व उसने हिन्दू वेग मुगल के विरुद्ध घोर संघर्ष किया था; लेकिन और आगे ऐसा कर सकना

१—अल बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० १८-१९।

२—अल-बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० १८-१९ तारीख-ए-अल्फी का ईलियट के हस्तलेख में "हब्बत" है; अबुल फजल कहता है कि सहैल अदली ने ग्वालियर का प्रभुत्व इस दास को दे दिया था।

३—तबकात-ए-अकबरी में हाजी खाँ लिखा गया है : इलियट ५-२६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कठिन पाकर उसने शान्ति की विनती की। हाजी खाँ, भीकन बसावन और अल बदाऊनी के पिता मध्यस्थ बने, और संग्राम खाँ कुछ शर्तों पर दुर्ग को त्याग देने के लिए तत्पर हो गया। लेकिन जब मुगल अमीरों ने नकद धन माल के रूप में मुआवजे के देने में विलम्ब और टालमटोल करना आरम्भ किया, तो संग्राम खाँ ने इसे राय सुर्जन हाड़ा को सौंप दिया और हाजी खां के साथ गुजरात चला गया। इस प्रकार हेमू के ये दो शक्तिशाली सहयोगी सेना-नायक मुगलों के रोष से बचने के लिए गुजरात के अधिक सुरक्षित प्रदेश में जाकर बस गए। उनको इसका आभास तक न था कि एक दिन हेमू का सच्चा शत्रु और प्राणहर्ता बैरम खाँ एक अफगान के हाथों अपना अन्त कराने के लिए गुजरात आएगा।[1]

अदली का सर्वनाश और मृत्यु—

हेमू की मृत्यु अदली के भाग्य के लिए एक घातक धक्का था। यह हेमू ही था जो उसके लिए एक स्तम्भ था और उसके पीछे अथवा बुलाने पर उसकी सहायता को आ सकता था। जैसे ही उसकी मृत्यु का समाचार पूर्वी प्रदेशों में पहुँचा, बंगाल के मुहम्मद शाह पुर्क ने जिसे हेमू ने हराया था तथा कालपी में मार डाला था, का पुत्र खिज्र खां अदली से बदला लेने के लिए, उसके विरुद्ध विद्रोह के लिए उठ खड़ा हुआ।[2] उसने गौड़ में खुतबा पढ़वाने की आज्ञा दी। अदली को युद्ध हारना पड़ा और वह विनष्ट हो गया। "उसका शरीर, जो पूर्णतः मृत नहीं था और जो खिज्र खाँ के आदेशाधीन था, एक हाथी के पैर से बाँध दिया गया और खींचा गया।"[3] इस प्रकार पूर्वी प्रदेशों में अदली का शासन ३ वर्ष तक रहा और उसकी मृत्यु ९६४ हिजरी, अर्थात् १५५८ ई० में हुई।

चुनार पर अधिकार –

पूर्व में अदली के राज्य का केन्द्र, चुनार का दुर्ग, अदली के एक दास जमाल खाँ के अधिकार में बना रहा। जब उसने सुना कि मुगल, खान जमन के नेतृत्व में, पूर्व की ओर बढ़ रहे हैं तो उसने दुर्ग के आत्म-समर्पण की शर्तों को निश्चित करने के लिए एक प्रतिनिधि मुगल दरबार में भेजा। मुगलों ने इसके निबटारे के लिए मेहर अली बेग को भेजा। उसके पास शर्तों से युक्त एक फरमान था।[4] जमाल ने दूत का बड़ा हार्दिक स्वागत किया और उसको

१—अलबदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० ४१।
२—फिरिश्ता : २ : पृ० १४७ से १५१।
३—नियामतउल्ला : जिल्द १ : पृ० १७१ से १७७।
४—अलबदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० २६-२७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शेरशाह और सलीम शाह के राजमहल तथा दुर्ग की सभी सुरक्षा सम्बन्धी युद्ध सामग्री दिखाई। लेकिन जब जमाल खाँ को सन्धि का फरमान, जिसमें उसे जौनपुर में पाँच परगने प्रदान किये गए थे, दिखाया गया तो उसका भ्रम दूर हुआ, क्योंकि उसकी आशाएँ कुछ इससे अधिक थीं। उत्तर में उसने मेहर अली के सामने अपनी निजी शर्तें रखी और मुगलें दरबार से अपने प्रार्थना पत्र का उत्तर आने तक उसे रोक रखने का प्रयास किया। इसी बीच खान जमन और फथ खाँ अफगान, जो रोहतास दुर्ग में था, के साथ उसका समझौता सफल हो-हो गया। मेहर अली को षडयंत्र की गन्ध आई और फथ खाँ की आशानुकूल विमुखता और खान जमन की अवज्ञा के कारण उसके कान खड़े हो गए। उसने बड़ी व्यग्रता में, गंगा के किनारे-किनारे बिना किसी साथ के दुर्ग से भागकर बच निकलने की चेष्टा की। अपने ध्येय में असफल होकर मेहर अली आगरा लौट गया। चुनार का दुर्ग जमाल खाँ के अधिकार में रह गया।[१] इसका आत्म-समर्पण करा लेने का मुगलों का प्रथम प्रयास सफल न हो सका।

कुछ समय पश्चात चुनार का दुर्ग, अदली के एक दूसरे दास फत्तू[२] व उसके पुत्र शेरखाँ के अधिकार में रहा। हिजरी ९६८ में खान जमन[३] ने उनके विरुद्ध एक युद्ध किया, जब कि वे एक पर्याप्त बड़ी सेना के साथ आए थे। खान जमन को विजय प्राप्त हुई। फत्तू ने, जिसकी ख्याति पहले ही चारों और फैल गई थी, मुगल दरबार के पास दुर्ग के आत्म समर्पण का प्रस्ताव करते हुए याचना-पत्र भेजा। इस समय खान जमन पर अवज्ञा का सन्देह किया जा रहा था; और अकबर स्वयं कड़ा (जिला इलाहाबाद में) की ओर बढ़ रहा था। फत्तू को ठिकाने से लगाने के लिए शेख मुहम्मद (जिसका कि फत्तू एक शिष्य था) और आसफ खाँ गए और उन्होंने चुनार दुर्ग पर शान्ति पूर्ण अधिकार कर लिया। तत्पश्चात फत्तू ने मुगलों की नौकरी कर ली और बाद में नगरकोट और कांगड़ा के घेरे में मिर्जा युसुफ खां, इस्माइल कुली खां, राजा बड़हर और अन्य अमीरों के साथ भाग लिया। अल-बदाऊनी द्वारा उसका इन शब्दों में उल्लेख है—'अदली की एक दास[४] मुसुआदी अली फत्तू'।

अफगानों के विरुद्ध नई कार्यवाही : ९७२ हिजरी—१५६२ ई०

अपने को बैरम खाँ की कष्टप्रद तथा अप्रिय अभिभावकता से मुक्त करके अकबर ने कुलीनों को अपनी आधीनता में लेना आरम्भ किया। जब उसके सेना नायक आसफ खाँ ने रानी दुर्गावती से अपना संघर्ष समाप्त किया,

---

१—२—अल बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० ४२—४४।
३—अली कुली खां।
४—अल-बदाऊनी--पृ० ७८-८०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो अकबर को पूर्व से समाचार मिला कि खान-ए-जमन अफगानों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर रहा था। परिणाम स्वरूप बंगाल का शासक सुलेमान कर्रानी सक्रिय हो गया। इस्लाम शाह के पुत्र खवास खाँ ने उजबक मुखियाओं, नामतः इस्कनदर खां, खान-ए-आलम, बहादुर खां और इब्राहीम के साथ मिल कर अवध में राजद्रोह के चिन्ह दर्शाना आरम्भ कर दिया। अकबर स्वयं रणभूमि में आया; जैसा कि अल-बदाऊनी द्वारा निम्नलिखित शब्दों में उल्लिखित है[१]—

'.........महामान्य शहंशाह शक्ति सम्पन्न कृत्रिम प्रस्थानों द्वारा लखनौ आए। सिकन्दर खाँ ने युद्ध नहीं किया, परन्तु खान जमन और बहादुर खाँ से मिलकर, सबने आसफ खाँ और मजनू खाँ का विरोध करना बन्द कर दिया, और अपने सब आदमियों और परिवारों के साथ जौनपुर को वापस लौटते हुए नशान नदी को पार किया, और निचले देश को चले गए .... ।"

'पूर्वोक्त वर्ष के जिल-हिज्जाह मास में १२ वें दिन शुक्रवार को सम्राट जौनपुर के किले पर उतरा..............। उन दिनों सम्राट ने बँगाल के गवर्नर सुलेमान कर्रानी (जिसकी खान-जमन से घनिष्ठ मित्रता थी) के पास खान-जमन को किसी प्रकार का सहयोग अथवा सहायता देने से रोकने के लिए हाजी मुहम्मद खाँ सिस्तानी को दूत बनाकर भेजा। जब वह रोहतास दुर्ग पहुँचा, कुछ अफगानों ने उसे पकड़ लिया और उसे खान-जमन के पास, जिनसे उनका एक प्रकार का ऐक्य था, भेज दिया ...."

खान-जमन के विद्रोह का प्रतिरोध करने के लिए अकबर ने हसन खां खजाञ्ची और महा-पात्र बाद-फरोश (जो शेरशाह और इस्लाम शाह के कृपापात्र दरबारियों में से एक था, और जो संगीत शास्त्र और हिन्दी कविता में अद्वितीय था) को उड़ीसा के राजा के पास (जो दूसरे राजाओं की अपेक्षा अपनी सेना व सैनिक शान के लिए विख्यात था) दूत के रूप में भेजा, ताकि वह उसे खान-जमन को सहयोग और सहायता देने से रोके। पूर्वी अधिराज्यों में जहाँ अफगान पहले से ही छिपे थे, शरण ग्रहण करने से उसको रोका जाना था। इसी बीच, अली कुली खाँ ने मुनीम खाँ द्वारा सन्धि के लिए समझौता करना प्रारम्भ कर दिया। उसने भी क्षमा-याचना की। बहादुर खाँ ने भी अधीनता मान ली। अकबर ने विद्रोहियों को क्षमा कर दिया और इस प्रकार उनका प्रेम प्राप्त किया। अफगान एक बार फिर पूर्व में अकेले रह गए।

रोहतास का आत्म समर्पण—

सुलेमान कर्रानी इस समय तक रोहतास तक कूच कर चुका था, फथ खां अफगान मुगलों की ओर से दुर्ग के गवर्नर के रूप में कार्य कर रहा

१—अल-बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० ७७—७८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था, और उसको घेर लिया गया। लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर, सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट शिकार का आनन्द लेने में रत था, खान जमन ने एक बार फिर आजमगढ़ की ओर कूच किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस से युद्ध किया। अली कुली खां ने जो गोरखपुर चला गया था, एक बार पुनः दया की भीख माँगी। मुनीम खां की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया। ३ मार्च, १५५६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबों को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया। लेकिन १५६७ ई० में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा, जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया। वह ९ जून १५६७ ई० को फथपुर परसोही में परास्त हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया। बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इस्कंदर लखनऊ से भाग गया और १५७? में उसकी मृत्यु हुई। विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गई और दूसरों को दे दी गई पूर्व में शान्ति थी। मुनीम खाँ को सबसे बड़ा अंश मिला।

"सम्राट ने उसे, जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा जमा नियाह से लेकर जूहसान नदी के घाट तक, बहादुर खां और खान जमन की सब जागीरें दे दी; और उसे सम्मान की पोषाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर बिदा कर दिया।" [१]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के विरुद्ध कूच किया, उस समय सुलेमान कर्रानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था। लेकिन अफगान शासक ने उजबक के विद्रोह के जाल में अपने को न फँसाने में चतुरता दिखाई। तत्पश्चात् उजबक मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया। सुलेमान ने एक शाँतिपूर्ण ढंग अपनाया और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया। उसने मुगल सम्राट से अपने नाम में सिक्के ढलवाना और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार करा लिया। इस ढंग से अफगान कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द लेते रहे। १५७२ ई० में सुलेमान ने अंतिम साँस ली, औ उसका पुत्र बयाजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ। लेकिन अपनी चरित्रहीनता के कारण वह, कुछ ही समय के अन्दर

१—अल-बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख : पृ० १०४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने छोटे साले हेन्सू और अन्य अमीरों के छल के कारण मार डाला गया।[१] बयाजीद के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली, मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध लंबा हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में थोड़ी सफलता मिली, और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर श्रीधर, जिसको शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई, की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की प्रशंसनीय सफलता की याद दिला दी, और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में दृढ़ता से एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में साँकेतिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आक्रमण करके पटना ले लिया गया, पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खां ने एक सन्धि सम्पन्न करा दी लेकिन दाऊद द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना कुछ समय तक ही बना रहा। अक्तूबर १५७५ ई० में मुनीम खां की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा, और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की आधीनता में मुगलों ने एक बार फिर अपने को सचेष्ट किया और यश कमाया। जुलाई १५७६ ई० में अफगान बुरी प्रकार से परास्त हो गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्व डा० त्रिपाठी द्वारा इन शब्दों में भली-भाँति आँका गया है।[२]

"अफगानों की तलवार से जुनैद से मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जगन्नाथ को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला काला पहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का निकट से

१—अल बदाऊनी : मुन्तखाब-उत तवारीख : पृ० १६७ से १८७ तक।

२—डा० आर० पी० त्रिपाठी : मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन : पृ० २१८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पीछा किया और उसे पकड़ लिया। खान-ए-जहान, दाऊद सदृश सुन्दर व्यक्ति के प्राण लेने के लिए इच्छुक नहीं था, लेकिन अमीरों ने उसके सिर को काटकर, सम्राट के पास भेज दिया, व कृतज्ञता दिखाई। उसके साथ-साथ बंगाल की स्वतंत्र "बादशाहत" भी समाप्त हो गई।" यह केवल बंगाल के स्वतंत्र शासन का ही अन्त नहीं था, वरन् अफगानों व मुगलों के संघर्ष का भी अन्त था। १५५६ ई० से १५७६ ई० तक की, २० वर्ष की अवधि में, अकबर को आए दिन अफगानों के विरोध का सामना करना पड़ा।

सन् १५५६ ई० में हेमू की पराजय से और देश के विभिन्न कोनों में अफगानों के भाग जाने में ही अकबर की विजय निहित नहीं थी। पूरे बीस वर्ष तक उसे मुगल साम्राज्य को जीवित रखने और दृढ़ करने के लिए बारम्बार संघर्ष करने पड़े। आरंभ में उसे एक-एक गढों पर अधिकार करना पड़ा। अलवर, रणथंभौर, ग्वालियर, चुनार, रोहतास और कई अन्य (गढ़) कड़े और लम्बे युद्ध के बाद मुगलों के हाथ लगे। अदली और हेमू के दास के रूप में उल्लिखित अफगान शूरवीरों ने कड़े प्रतिरोध के बाद ही हार मानी। बिहार, उड़ीसा और बंगाल में उनके अन्तिम गढ़ का विनाश होने पर मुगलों को एक सांकेतिक विजय प्राप्त हुई। मुगल साम्राज्य की नींव स्थिर हो गई और सम्राट धन-मान-वर्द्धक युद्धों की अवधि में, व विस्तार के तथा मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ करने के युग में प्रविष्ट होने के लिए स्वतंत्र था। हेमू और उनके वंशज व सेना-नायक घटनास्थल से पूर्णतः अदृश्य हो गये थे। जो जीवित रहे उन्होंने नए शासन से समझौता कर लिया, और मुगलों से पद, सम्मान और कृपा स्वीकार कर ली।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय—१०

अफगानों और दूसरों से मुगलों का राजीनामा

अकबर प्रारम्भ से ही समझौते की भावना से ओतप्रोत था और वह उसके शासन काल के प्रारंभिक वर्षों से ही प्रकट होने लग गई थी। यह कहा गया है कि १५६१ ई० में ही उसने साधुओं और फकीरों की संगति करना आरंभ कर दिया था। मुगल सम्राट के चरित्र के इस स्वरूप से संबंधित सर्वप्रथम कथा आने वाली पीढ़ियों को संत श्रीहित हरिवंश के निष्ठावान् शिष्यों राधावल्लभी संतों से हस्तगत हुई। राधावल्लभी सम्प्रदाय के कवि, संत और संस्थापक श्रीहित अकबर के समकालीन थे। उनका जन्म, संवत १५५९ में हुआ और वह १६५९ वि० संवत्[२] तक जीवित रहे। अकबर के राज्याभिषेक के समय वह पूर्ण यौवन पर थे और उनका संप्रदाय मथुरा-वृन्दावन में कीर्ति-सम्पन्न था। उनके शिष्यों में से दो ढूसर जाति के थे जिनमें से एक ने अकबर को अपने आध्यात्मिक बल के चमत्कार दिखाये थे, जैसा कि भगवत मुदित द्वारा रचित निम्नलिखित चौपाइयों से प्रकट हो जायगा।

नवल दास की कथा

अब श्रीहित हरिवंश के, शिष्य नवल हैं जान ॥
ढूसर कुल पावन कियो, तिनको करौ बखान ॥ १ ॥

१—डा०आर०पी०त्रिपाठी : मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० २२९।
"वर्ष १५६१ ई० में ही, वह साधारण मनुष्यों, साधुओं और फकीरों के बीच आगरा की गलिओं में वेश बदलकर घूमा करता था। १५६२ ई० में अपनी ही इच्छा से उसने राजपूतों से विधिवत् वैवाहिक संबंध करने का महत्वपूर्ण पग उठाया ……। संभवत: उस समय वह अफगानों और अपने दरबार के अविश्वासी कुलीनों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए राजपूतों से घनिष्ठतम संबंध स्थापित करने का इच्छुक था……।"

१५६३ ई०में उसने मथुरा में यात्री-कर समाप्त कर दिया और १५६४ ई० में जजिया समाप्त कर दिया।

२—कविता कौमुदी—भाग १-पृ० २२१ : १९२३ संस्करण : १५०२ ई० में जन्म और १६०२ ई० तक जीवित। विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार भी उसकी जन्मतिथि १५५९ वि० संवत् है—राधावल्लभी सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य : २०१४ वि० संवत्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रैवारी (रिवाड़ी) मधि घर है तिनको, कथा कीरतन में मन तिनकौ ।। २ ।।
साधुन की सेवा सुठि करै, महा नम्र सबको मन हरै ।। ३ ।।
सत संगति वृन्दावन आए, श्री हरिवंश मिले सुख पाए ।। ४ ।।
बहुत घौस (दिवस) लौं सेवा कीनी, गुरु नें शिष्य परीक्षा लीनी ।। ५ ।।
तब निजु मन्त्र सुनायौ जाकौ, धर्म अनन्य बतायौ ताकौ ।। ६ ।।
महाविरक्त जुगल रस भीनौं, जथा लाभ संतोष न हीनौं ।। ७ ।।
श्री राधा बल्लभ के गुण गावैं, रसिक जननि के चित्त चुरावैं ।। ८ ।।
बाहिर भीतर प्रभु को देखैं, हानि लाभ सुख दुःख समलेखे ।। ९ ।।
जहाँ तहाँ फिरे नवल को भाव, गुण हो गुण गहिबे को चाव ।। १० ।।
छधा त्रषा के नहिं सोई, अति अगाध हिये लहै न कोई ।। ११ ।।
गुरु हरि साधुनि सुखद सुभाय, वृथा नकाल भजन विन जाई ।। १२ ।।
और सुनौं कौतुक एक नीकौ, परचै भयो नवल जन जी कौ [1] ।। १३ ।।

ऐसा था श्रीहित हरिवंश का शिष्य, जिसने अकबर के रोष से हेमू की मृत्यु-पर्यन्त ढूसर जाति को बचाया। हेमू की जाति के होने के कारण ढूसरों को सताने वाली नीति को छोड़ देने के लिए अकबर को सफलता पूर्वक फुसलाने वाले वही थे। मुगल सम्राट ने बन्दी बनाये गये रिवाड़ी के सब ढूसरों को उन्हीं के कहने से मुक्त कर दिया और महिपाल के पुत्र, चौधरी नाथमल को नारनौल की सरकार में एक जागीर प्रदान की।[2] इस उदार अनुदान से संबंधित कथा, जिस (अनुदान) के लाभ वर्तमान शताब्दी के आरंभ काल तक पटियाला के सिख राज्य (अब पूर्वी पंजाब में विलीन) के अधीनस्थ कनौडिया ढूसरों द्वारा उठाए गए हैं, अनन्य रसिकमाल के लेखक द्वारा इन दोहों में उल्लिखित हैं।[3]

हुमायूँ शाह[4] जब गढ़ गिर मरो, हेमू राज कछूक दिन करौ ।। १४ ।।
बहुरि अकबर को भयौ राज, हेमू मार्‌यों बैठयो गाज ।। १५ ।।

१—भगवत मुदित : रसिक अनन्य माल : ना० प्र० सभा काशी के पुस्तकालय से, प्रतिकाल, १७८९ सम्वत्।

गोस्वामी नवलदास को वंशावली में जगन्नाथ का पुत्र उल्लिखित किया गया है। वह नवलकिशोर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

२—देखिए-अध्याय १। पृ० सं० १२ से १४.

३—भगवत मुदित : अथ रसिक अनन्य माल : प्रकरण : नवलदास की कथा : पृ० सं० ४५-४७ : हस्तलिखित प्रति : मायाशंकर याज्ञिक संग्रह : नागरी-प्रचारिणी-सभा-संग्रह : वाराणसी।

४—वही : दूसरी हस्तलिखित प्रति में "शेरशाह" लिखा है जो त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि शेरशाह की मृत्यु गढ़ से गिरकर नहीं हुई थी। व हेमू ने हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् राज्य किया था न कि शेरशाह के पश्चात्। इसी प्रकार "अकबर" की जगह "हिमाऊ" लिखा है, वह भी त्रुटिपूर्ण है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिंहासनारूढ़ होते ही अकबर ने आज्ञा दी कि सब ढूसरों को वंदी बना लिया जाय—

"साह कही बनियन को लावहु, मारो सबन जहां लगि पावहु ॥ १६ ॥
अहदीं[3] गए पकड़ि सब लाए, आन झरोखै तरै दिखाए ॥ १७ ॥

मुगल सैनिक गए और बिना कुछ सोचे विचारे सबको वंदी बना लाये और उनको सम्राट के सामने प्रस्तुत किया—

'तब उजीर ने विनती कीनी, चूक सबै ढूसर सिरदीनी ॥ १८ ॥
वणिक छोड़ तब ढूसर ही पकड़े, ढूँढ़ ढूँढ़ बेड़िन में जकड़े ॥ १९ ॥

लेकिन वज़ीर ने बतलाया कि सब ढूसरों को नहीं पकड़ा जाना था, वल्कि केवल हेमू की जाति से संबंधित ढूसरों को ही वंदी बनाना था।

"हेमू कुल पकड़न को धाए, दोय शत रिवाड़ी से लाए ॥ २० ॥
वंदी किये बहुत त्रास दिखाए, दूरे छिपे तिनहीं बताए" ॥ २१ ॥

सैनिकों ने परिवर्तित आज्ञा का पालन किया और केवल रिवाड़ी से हेमू जाति के लगभग २०० ढूसरों को पकड़ लिया। उनको वंदी बनाया गया और डराया-धमकाया गया, जिससे और बहुत सों का भी पता चल गया, जो भाग गए थे तथा छिपे हुए थे। यह दमन इतना व्यापक था कि रिवाड़ी और दिल्ली में या उसके आस पास कोई एक ढ़ूसर भी नहीं मिल सकता था। उस समय सम्राट को यह सूचना मिली कि केवल एक ढ़ूसर शेष रह गया था, जो वृन्दावन में तपोमय जीवन-यापनकर रहा था ' ······" शाही दूतों ने आकर कहा:—

ढूसर तो अब कोई नाहीं, एक रहो वृन्दावन माही ॥ २२ ॥
तब वृन्दावन अहदी[3] आये, नवलदास कौं ले पहुंचाए ॥ २३ ॥

जब संत नवलदास को अकबर के सामने लाया गया तो उसने उनसे उनकी जाति और पूर्वधारणायें पूछी। इस पर उन्होंने उत्तर दिया:—

'उनकी कोई जाति नहीं थी और हरिभक्तों की अपनी निजी पूर्ण धारणाएँ थीं जिसके अन्तर्गत वर्ण अथवा जाति का कोई भेद शेष नहीं रह गया था।' वह प्रसंग इस प्रकार वर्णित है:—

"पातशाह ने पूछी बात, कहिरे नवल अपनी जात ॥ २४ ॥
नवल कही जिन पैदा किये, अब उन हम अपने करि लिये ॥२५ ॥

३—कुलीन अश्वारोही (Gentleman Troopers) डी० शर्मा : मुगल शासन व राज्य पृ० १४५ : मुगल सम्राट के अधीन एक बख्शी के नायकत्व में कुलीन अश्वारोहियों का एक दल होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाति न कोई भये अतीत, हरि भक्तन की औरहिं रीति ॥ २६ ॥
साह कही बाँधू अब तोही, न्यारी रीत दिखावत मोहि ॥ २७ ॥

संत के ढीठ और उदासीन उत्तरों से मुगल सम्राट उत्तेजित हो उठा और उसको कारागार में डाल दिया। उसके तत्पश्चात् वह घटना घटी जिससे अकबर सबसे अधिक प्रभावित हुआ। नवलदास कारागार में भी प्रार्थनाएँ करते रहे, और कठिनाइयों व यातनाओं के होते हुए भी अपने "श्याम के गुण" गाते रहे तथा उन्होंने कारागार-गृह से बच निकलने एवं सशरीर वृन्दावन में भक्तों के बीच पहुँचने का चमत्कार दिखाया। जब अकबर को इसकी सूचना मिली तो वह बहुत पछताया और उन्हें एक बार फिर बुलवा भेजा। इस बार क्लेश देने के लिए नहीं, बल्कि सन्मानित करने के लिए। इस घटना का वर्णन कवि द्वारा इन पंक्तियों में किया गया है—

साखी नवलकृत

"जौ कोई जरै जनजीरन में, तो तोड़ों सत सात।
प्रेम तन्तु अटक्यों नवल, मटक्यों तनक न जात ॥ २८ ॥"

चौपाई—**साह न समझौ नवल जु कह्यो, अर्थ वजीर कहे तो लह्यों ॥२६॥**
सुनत शाह जनजीर मंगाई, पग अरु हाथ गुद्दी में नाई ॥३०॥
बाँधि जनजीर दियो बंदसाला, मारि कपाट लगायो ताला ॥३१॥
जल अरु अन्न जानि नहिं पावे, ह्वाईं ही नवल स्याम गुण गावै ॥३२॥
गुरु पर ध्यान चित लायो, देह सहित वृन्दावन आयो ॥३३॥
तीन दिना पाछे सुध लीनी, सब जंजीर कोठें मधि चीन्ही ॥३४॥
फिरि कै अहदी साहि पठाऔ, नवल बहुरि वृन्दावन पायौ ॥३५॥

जब नवलदास दूसरी बार अकबर के सामने आए, उनको बैठने को स्थान दिया गया और कोई प्रार्थना करने को कहा गया—

"करामात तुम प्रगट दिखाई, ताते मो मन दया जु आई ॥३७॥
आज्ञा करौ सोई फरमान,.......................................॥३८॥

इस पर नवलदास ने उत्तर दिया—

"...................................दूसर क्यों रोके बिन जान ॥३८॥
जो कोई करे सोई फल पावै, क्यौं तू इनको वृथा सतावै ॥३६॥
अैसे उपदेस्यों बहु ज्ञान, दूसर सब छुड़वाये आन ॥४०॥
अपने अपने घरनि पठाए, तब से दूसर भक्त कहाये ॥४१॥

"तुमने बिना उनका अपराध जाने दूसरों को बंदी क्यों बना रखा है? जो जैसा करता है वैसा ही फल पायेगा। उनका अपना कोई दोष न होने पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुम उनको दंड क्यों देते हो ?" ऐसी मर्मस्पर्शी प्रार्थना ने अकबर में सद्विचार जागृत कर दिए और उसने ढ़ूसरों को मुक्त कर दिया, तथा उनको उनके स्थानों पर पहुँचवा दिया। तब से ढ़ूसर राजभक्त हो गए और मुगलों द्वारा मित्र बना लिए गए। नवलदास का कुछ भी स्वीकार करने को मना कर देने से मुगल सम्राट इतना प्रभावित हुआ कि उसने महिपाल ढ़ूसर के पुत्र, चौधरी नाथमल के नाम में नारनौल की सरकार में एक जागीर प्रदान की।

कथा की सत्यता—

यही समय था जब कि राधावल्लभी सम्प्रदाय वृन्दावन में अपने शिखर पर था, जब कि विद्वान और निष्ठावान् संत हित हरिवंश के निकट एकत्रित हुए थे। अकबर द्वारा नवलदास के प्रति दर्शायी गयी उदारता से संबंधित उपर्युक्त कथा को राधावल्लभी संतों के बीच बहुत बड़ा विश्वास प्राप्त हुआ और सन्तति के लिए भगवतमुदित द्वारा रसिक अनन्यमाल द्वारा सुरक्षित किया गया है।

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के पुस्तकालय में रसिक अनन्यमाल की दो हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं।[1] हस्तलेखों में से एक पर तो वर्ष १८३७ वि० संवत् (अर्थात् १७८० ई०) अंकित है और दूसरे पर वर्ष १८१७ वि० सं० (अर्थात् १७६० ई०) प्रथम तो सभा का मौलिक संग्रह है, जब कि दूसरा श्री माया शंकर याज्ञिक के संग्रह में से लिया गया है। उन पर निम्नांकित हस्तलिखित अंतिम वाक्य अंकित है, जो उनकी सत्यता और प्राचीनता की ओर पुष्टि करते हैं—

(१) "इति श्री रसिक माल भगवत मुदित कृत समाप्तं, सम्पूर्णम्। अनन्य पुस्तक लिखितं। श्री वृन्दावन धामे। श्री जमुना तटे, संवत् १८३७ मिती चैत सुदी २, मंगलवार। श्री हस्ताक्षर प्रियादास पठनार्थ नवनीत-लाल। श्री" (हस्तलेख)

(२) "संवत् १८१७ वर्षे मासानां आश्विन मासेषु मल्लसपेक्षे पुनस्तिथौं

१—भगवतमुदित—

रसिक अनन्यमाल : (हस्तलेख) काशी-नागरी प्रचारिणी सभा, पुस्तकालय की प्रति से उद्धृत। अन्तिम पृ०—१२७-१२८ : यह भी देखिए : विजेन्द्र स्नातक : "राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य" (हिंदी में) : वि० संवत २०१४ (१९५७ ई०:)।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीया यास्य युवा से लिख्यतेहि इदं स्वामी बालकदास समीपे श्री गुरू प्रसाद छूंगरसी लिख्यते ।''[1]

हस्तलिखित प्रति से यह स्पष्ट है कि नवलदास हित हरिवंश के शिष्य उस समय जीवित थे जब कि वृन्दावन राधावल्लभी सम्प्रदाय की क्रियाओं से गुंजार रहा था । सम्प्रदाय के संस्थापक की प्रशंसा सुनकर दूर-दूर के लोग मथुरा में एकत्रित होने लगे । हित-हरिवंश के शिष्यों में से कुछ ने सुदूर स्थानों की यात्रा की और लौगों को अपनी विचारधारा में परिवर्तित किया । नवलदास को ओड़छा भेजा गया, जहाँ उनकी शिक्षाओं से प्रभावित होकर हरी राम व्यास ने उनका पदानुसरण किया और वे वृन्दावन जा कर बस गये ।[2] उनकी धार्मिक कविताएं एवं रचनाएं भी उपलब्ध हैं । नवलदास के अतिरिक्त हेमू के पिता श्री पूरनदास का उल्लेख है जो स्वयं भी नवलदास के साथ-साथ वृन्दावन आये थे । उनको ठट्टा (सिन्ध) जाने को कहा गया और वे एक प्रमुख मनसबदार श्री परमानन्द को अपनी विचारधारा में परिवर्तित करने में सफल हुए ।[3] उसने अपने मनसबदारी अधिकार त्याग दिये और वह मथुरा पहुँचने पर हित हरिवंश का शिष्य बन गया । इस प्रकार श्री पूरनदास को प्रेम-सन्देश का प्रचार करने का अवसर मिला और उन्होने सिन्ध में एक दूरस्थ स्थान के लिए सफलतापूर्वक एक सद्भावनापूर्ण यात्रा की ।

हस्तलेखों में अनेक संतों के वर्णनात्मक रेखाचित्र हैं – जैसे हित हरिबंश, हरीराम व्यास, सुन्दरदास, श्री पूरनदास और नवलदास । इन संतों के विशद वर्णन से इस सम्प्रदाय के निष्ठावान संतों के प्रभाव के विस्तार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । कोई आश्चर्य नहीं यदि अकबर को राधावल्लभी कवि और संतों में श्रद्धा हो गई हो । मथुरा और वृन्दावन को की गई उसकी खुली और गुप्त यात्राओं के विषय में कई कथाऐं प्रचलित है । उसकी कृपात्मक नीति के कारण इस क्षेत्र में शान्तिपूर्ण भक्तिभावयुक्त कार्य होने लगे । मन्दिरों के निर्माण के विषय में भी विवरण उपलब्ध हैं, जिससे प्रकट होता है कि अकबर के समय में

१—भगवत मुदित : रसिक अनन्यमाल : मायाशंकर याज्ञिक की प्रति से उद्धत- (नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित) ।''

२—वही : प्रकरण : हितचरित्र—व्यास जू कौ प्रसंग : १५-५५ : प्र० सं० १५-१८।

३—वही : प्रकरण : हितचरित्र हरिवंश का वृन्दावन आगमन—पृ० सं ४-५ । तथा रसिक अनन्यमाल—प्रकरण—परमानन्द को परिचय—१-५३ तक पृ० सं० ५२-५४ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह सम्प्रदाय चर्मोत्कर्ष पर था। १५८५ ई० में ही वृन्दावन में एक मन्दिर का निर्माण हुआ जो राधा को समर्पित कर दिया गया। [१], [२], [३],

हेमू के वंशज—

हेमू के भतीजे, महिपाल के वंशजों में से चौधरी नाथमल को जागीर प्रदान करने वाला मूल फरमान उपलब्ध है। इससे बिना किसी शंका से यह सिद्ध होता है कि दयालु-हृदय मुगल सम्राट ने ढूसरों से पूर्णतः राजीनामा कर लिया था। फरमान स्थाई रूप से प्रदान किया गया था। चौधरी नाथमल या उसके वंशजो के लिए वर्ष प्रति वर्ष उसका नवीकरण आवश्यक न था। यह भी सत्य है कि पिछले मुगल सम्राटों द्वारा १९ वीं शताब्दी तक इस फरमान का मान किया गया था; और पटियाला राज्य का सिख शासक तक, जिसके अधिकार-क्षेत्र में वह जागीर आई, कुछ वर्षों तक उसका मान करता रहा। अनुदान राशि को धीरे-धीरे घटाकर, राज्य ने कनौडिया ढूसरों को यह अनुदान बंद कर दिया। पटियाला राज्य के नारनौल इलाका में ढोसी पहाड़ी में जातीय मंदिर और अन्य इमारतों को राज्य-कोष से सहायता अनुदान प्राप्त होते रहे थे। [४] नाथमल को जागीर मिलने के पश्चात्, कई अन्य ढूसरों को मथुरा बुलन्दशहर, गुड़गाँव और दूसरी सरकारो में परगनों की कानूनगोई प्राप्त हुई। इसके उपरान्त कुछ ढूसरों मुगल सम्राट के अधीन उच्च पदों पर पहुंच गए।

१—उसने वहाँ एक मन्दिर भी बनवाया, जो अब भी स्थिर है—और द्वार पर अंकित लेख से यह प्रकट होता है कि यह संवत् १६४१ या १५८५ ई० में हरिवंश द्वारा श्री राधावल्लभ को समर्पित कर दिया गया था।

२—"राधावल्लभो का "श्री राधा वल्लभ" के नाम से वृन्दावन में कृष्ण को समर्पित एक मन्दिर है, जिसका निर्माण सम्प्रदाय के संस्थापक तथा सहारनपुर जिले में देववंद के निवासी हरिवंश द्वारा वर्ष १५८५ ई० में कराया गया कहा जाता हैं। दीवारों पर बेढंगेपन से लिखित कई लेख है; लेकिन इस समय दर्शनीय सबसे प्राचीन लेख पर संवत् १६८४ (१६-२७ ई०) की तिथि अंकित है—मथुरा-पृ० १२०-१२९।

३—"इन दो पत्नियों से उसके दो पुत्र थे—वृज चन्द्र और कृष्ण चन्द। जिनमें से दूसरे ने राधामोहन का मन्दिर बनवाया, जो अब भी उसके वंशजों के अधिकार में है। वृजचन्द्र सम्प्रदाय के प्रमुख मन्दिर-राधावल्लभ का मंदिर के वर्तमान गोसाइयों का पूर्वज था। मन्दिर के स्तम्भों में से एक पर लेख है, जिस पर तिथि १६८३ संवत् (१६२६ ई०) अंकित है।

४—ढोसी में स्थित मंदिर और इमारतों के पोषण के लिए, जो भार्गव सभा के प्रबंध में है, कानौड़ में कानूनगोई और नानकार अधिकारों के स्थान पर अनुदानों को प्रदान करने तथा लौटाने के लिए मुख्य मंत्री, दीवान, बहादुर सर पण्डित दया किशन कौल को भेजा गया धर्म मित्र भार्गव का प्रार्थना-पत्र देखें—दिनाँक ८ जनवरी १९२४ ई०। देखिए परिशिष्ट—क

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनमें से राव सुजानसिंह पर्याप्त प्रसिद्ध हुए। वह कुतुबपुर के निवासी थे, और १८ वीं शताब्दी में वह मथुरा और कोइल (अलीगढ़) में एक उच्च पदाधिकारी के रूप में रहे। इनके वंशज अब भी अलीगढ़ में रहते हैं।

इस प्रकार हेमू के शक्तिशाली नेतृत्व में ढूसर एक व्यवसायी जाति से वीरता के शिखर पर पहुँचे और उन्होंने उसके परिणाम भी भोगे। व्यापारिक प्रवीणता व सैनिक भावना के इन दो पूर्णत:] विपरीत भावों का सम्मिश्रण आज भी हेमू की जाति में स्पष्ट है। यद्यपि संख्या में जाति कभी बड़ी नहीं रही है [1] इसकी पृथकता और संकीर्णता ने अन्य जातियों से—यहाँ तक कि गुजरात और दक्षिण के भार्गवों तक से उसके सम्मिश्रण को परिमित बना दिया था। कुछ सहस्त्र की संख्या वाली जाति की ऐसी संकीर्ण परिधि के लाभ और हानि सारे देश में फैल जाने के कारण और अधिक हो गए हैं। विवरण के लिए अधिकतर नागरिक क्षेत्र इसके पर्याप्त साक्षी है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि वर्तमान ढ़ूसरों ने वीर राजनीतिज्ञ हेमू के भाव विशेषता, कथाएँ और वृत्तान्त पर्याप्त सीमा तक सुरक्षित रखी हैं। मुगल सम्राट द्वारा किये गये राजीनामे ने इनको एक नया जीवन दान दिया था। ऐसी छोटी जाति का क्लेश रहित संताप के कारण सर्व नाश हो जाना बहुत कठिन न होता।

अकबर ने ढ़ूसरों से राजीमामा किया, उनकी राजभक्ति प्राप्त की और अपने द्वारा धीरे-धीरे निर्मित नई कुलीनता सामन्तशाही में अफगानों को सम्मिलित कर लिया। २० वर्ष की अवधि में, जैसा कि पहले के एक अध्याय में उल्लिखित है, अकबर ने शिवालिक, गुजरात, ग्वालियर, कालपी, चुनार, रोहतास, हाजीपुर, पटना, बंगाल और उड़ीसा में अफगान योद्धाओं को सफलतापूर्वक खोज निकाला। उनकी जागीरों का वृहत जाल, उनके गढ़ और छिपने के स्थानों पर निष्ठुरतापूर्वक अधिकार कर लिया गया; और एक एक करके अफगानों ने या तो अकबर की कृपा प्राप्त की या युद्ध करके परास्त हो गए। जब २० वर्ष पश्चात उसके प्रभावशाली शत्रु ढ़ूसर और अफगानों ने उसके राज्य से पूर्णत: राजीनामा कर लिया, तब अकबर के राज्य की प्रथम अवस्था समाप्त हो गई और मुगल साम्राज्य दृढ़ हो गया।

१—विभिन्न जनसंख्या की रिपोर्टों के अनुसार जाति की संख्या यह रही है—

१९०० ई० :	३०१७ पुरुष	२८६६ स्त्रियाँ	=५८८०
१९१५ ई० :	२८८१ ,,	२४४९ ,,	=५३३०
१९३१ ई० :	३८२५ ,,	३११७ ,,	=६९४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपसंहार

हेमू का उत्थान उज्जवल था। वह विद्युत की भाँति चमका और प्रकाशमान हुआ। उसके यश और कीर्ति ने उसके समकालीनों की आँखें चौंधिया दी। वह कुछ काल तक काले बादलों में रजत-रेखा सा चमका, लेकिन राजनैतिक क्षेत्र के दृश्य से उसका ग्रहण भी उतना ही अचानक और अप्रत्याशित हुआ।

जन्म से ही एक असाधारण व्यक्ति, जिसमें भाव अथवा शिक्षा से कोई राजसी अभिमान न था, हेमू एक सेनापति, शूरवीर, विजेता, दिग्विजेता एवं एक प्रमुख सेनानायक बन गया। उसकी चतुराई भरी चालें, उसके आक्रमण का ढंग और उसकी संगठनात्मक दक्षता ने उसके शत्रुओं को स्तम्भित कर दिया। अपने स्वामी अदली द्वारा, राजा विक्रमाजीत की उपाधि से सम्मानित किए जाने पर, वह दिल्ली का राजा, बल्कि यूं समझिए कि मध्यकालीन भारत का अन्तिम हिन्दू सम्राट बन गया।

एक धर्मात्मा पिता के पुत्र होने के कारण, जो वृन्दावन में श्री हित वंश के शिष्य के रूप में श्याम और हरी के प्रेम और पूजा में रत थे, हेमू ने विश्वबन्धुत्व की सभी भावनाओं और विशाल-हृदयता को ग्रहण कर लिया। संख्या में अल्प और अलवर, रिवाड़ी और नारनौल स्थानों के निवासी ढूसर भार्गवों की जाति का होते हुए, उसने राजपूतों और अफगानों का सच्चा और स्थायी सहयोग प्राप्त किया। अपने सूक्ष्म शारीरिक गठन, विनीत व्यक्तित्व, अदली जैसे स्वामी के प्रति अनन्य राजभक्ति न होने पर भी उसकी वाणी आदेशात्मक थी और वह युद्ध के बीच में उल्लासपूर्वक चिल्लाता था। वह अपने संगी-साथियों पर काबू पाने में सफल रहा, उसने सेनानिओं की राजभक्ति प्राप्त की और अपने भीषणतम शत्रुओं पर विजय पाई। चाहे रणभूमि हो या प्रीति-भोज का भवन, वह सदैव कोलाहल पूर्ण था और जो उपस्थित होते थे, उनको पराक्रम और शूरवीरता के शिखर पर पहुँचानेके लिएउत्तेजित किया करता था।

हेमू प्रभावशाली और आकर्षक व्यक्तित्व सम्पन्न था। उसका बहुत ही अल्प समय में प्रधान-मंत्रित्व प्राप्त कर लेने और भारत की तत्कालीन राजधानी दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ होने की घटना इतिहास में अद्वितीय है। उसने इस्लाम शाह के अधीन सरकारी नौकरी पाई, और सन् १५५३ ई० में मुबारिज़ खां, अर्थात् अदली के सिंहासनारूढ़ होने पर उसने प्रधान-मंत्रित्व केवल योग्यता के बल पर प्राप्त किया। उत्तरी भारत में तीन वर्ष की अवधि तक सब मामलों की बागडोर सँभालकर वह आगे-आगे रहा। इतने कम समय में उसने २२ युद्धों का विजेता होने, दिल्ली को जीतने तथा अन्ततः पानीपत में शहीद होने का यश प्राप्त किया। उसके विपक्षी वृत्तान्तकारों द्वारा छोड़े गए वर्णनों से उसके साहस और बुद्धिमानी और प्रत्येक पग पर निर्विवाद सफलता का प्रमाण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलता है। एक सेनानायक के लिए यह वस्तुतः एक गौरवमय लेखा है, विशेषकर उसके लिए जो पेशे या जन्म से नहीं बल्कि समय की आवश्यकताओं द्वारा एक योद्धा बन गया।

हेमू की युद्ध की तैयारियां और आवश्यकता से अधिक सावधानी से किए गए विवरण, पाठकवृन्द को आज भी आश्चर्यान्वित कर देते हैं। पर्वत सदृश १५०० युद्ध-गजों को एकत्रित करने में उसकी प्रमुख सफलता निहित थी। उनको खिलाना-पिलाना—और वह भी चावल, मक्खन और शक्कर का भोजन—विशेषतः जब कि भारत के कुछ भागों में अकाल और महामारी का जोर था—वहुत ही विस्मयकारी कार्य था—यही नहीं, युद्ध भी लड़े जाने थे, शान्ति पुनः स्थापित की जाने वाली थी और दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार भी किया जाना था। युद्ध की सर्वांगीण तैयारियों के बिना यह सब संभव नहीं था। युद्ध की गतिविधि की कला में हेमू अपने देशवासियों को अतिक्रमित कर गया था। १५०० हाथियों और हजारों घोड़ों सहित एक टिड्डीदल के समान सेना को पूर्णतः सुव्यवस्थित रखकर वह एक प्रकार का चमत्कार दिखा रहा था। सब लेखकों ने उसकी युद्ध की तैयारियों की प्रशंसा की है, और उसके द्वारा प्राप्त की गई सफलता, शस्त्रों, युद्ध सामग्री, सैनिकों, हाथियों तथा अनन्त एवं अथाह खजानों के अतुलनीय संग्रह को एकत्रित करने में निहित थी।

हेमू अध्यवसायी और अशिथिल था। यद्यपि उसे अधिक घुड़सवारी नहीं आती थी, यह कहा जाता है कि वह हाथियों के हौदों में आरूढ़ रहने का आदी हो गया था। कल्पना कीजिए एक आदमी की, जो एक रणभूमि से दूसरी रणभूमि को, कभी अजमेर में, तो कभी खवासपुर टाँडा में, ग्वालियर से चुनार तथा कालपी को, कालपी से आगरा को, कभी पीछे को कभी आगे को घूम रहा हो। यदि कोई उस समय का अनुपात निकालने का यत्न करे तो उसने तीन वर्ष की अल्प अवधि में १६ वीं शताब्दी के भारत में विभिन्न स्थानों में यात्रा की होगी, जो बहुत आश्चर्यजनक है। कहा जाता है कि उसके युद्ध के हाथी इतने द्रुतगामी थे कि घोड़े भी उनका मुकावला नहीं कर सकते थे। संक्षेप में, वे विस्मयकारी अथवा द्रुत गति के आदर्श रहे होंगे, नहीं तो ३ वर्ष उससे भी कम की संक्षिप्त अवधि में कोई भी सेना-नायक इतने युद्ध नहीं लड़ सकता था, और विपक्षियों के विरुद्ध, उत्तर में पूर्व में तथा पश्चिम में भी अपने को स्थिर नहीं रख सकता था।

हेमू दूरदर्शी था। वह जानता था कि शान्ति तभी स्थापित की जा सकती थी जब कि अड़ियल विरोधी अथवा विद्रोही अफगान कुलीनों को अवरुद्ध किया जा सके। उसने उन्हें नीचा दिखाने, उन्हें शिकार बनाने तथा बंगाल की सीमाओं तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनका पीछा करने में संकोच नहीं किया। उसने इब्राहीम को उसके गढ़ों से निकाल बाहर किया और परिणामतः दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करने के लिए मार्ग साफ कर लिया। उसने सिकन्दर सूर से, जो मुगलों से युद्ध करने में लगा था, अपना संघर्ष बचाया। जब हुमायूं दिल्ली में अपना शासन पुनः स्थापित करने में सफल हुआ, हेमू ने उतावलेपन में कोई कार्यवाही नहीं की। उसने अवसर की प्रतीक्षा की। हुमायूं की मृत्यु ने वह अवसर प्रदान किया। उसने उसे ग्रहण किया और इतनी शक्तिशाली सेना एकत्रित की कि दिल्ली में उसके सामने से मुगलों को भागना पड़ा। विजय के समय भी उसने मस्तिष्क का संतुलन नहीं खोया। संकटपूर्ण पीछा करने से वह दूर ही रहता था और बिना अपनी स्थिति को दृढ़ किए वह एक इंच भी आगे नहीं बढ़ता था। यह दूरदर्शिता उसकी सफलता की कुंजी थी।

हेमू प्रमुखतः १६ वीं शताब्दी की देन था, और उसको "शताब्दी का सबसे अधिक बिलक्षण व्यक्ति", ठीक ही कहकर पुकारा गया है। वह उस युग में रहा, जो शूरवीरों, राजनीतिज्ञों और प्रतिभावान व्यक्तियों से भरा था। एक ओर बाबर और शेरशाह तथा दूसरी ओर अकबर के कार्यों के शानदार एवं दर्पयुक्त वर्णनों के कारण—हेमू की कीर्ति और सफलता छिप गई। उन सबमें हेमू के कार्यों की अवधि सबसे छोटी थी लेकिन अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने के हेतु लिए गए समय में अनुपाततः हेमू सबसे आगे निकल जाता है। बाबर ने तीन प्रमुख युद्ध लड़े और समय के अभाव के कारण अधिक नहीं कर सका। उसने अपने पुत्र के लिए एक अस्थिर साम्राज्य छोड़ा। हुमायूँ को सदैव संकटपूर्ण समय का सामना करना पड़ा। शेरशाह के जीवन-काल की हेमू के जीवन काल से उत्तम समानता है, और ऐसा जान पड़ता है कि हेमू ने उसके पद चिन्हों का अनुसरण किया। लेकिन उस काल द्वारा निर्णय करने से, जिसमें दोनों कीर्ति शिखर पर पहुँचे, हेमू उससे कहीं अधिक उत्तम ठहरता है। हुमायूं के न रहने से, शेरशाह का समय बड़ी सुगमता से बीत रहा था। लेकिन उसको राजा मालदेव और गक्खर प्रदेश के विरुद्ध कड़ा युद्ध करना पड़ा और उसने कालिन्जर में अपना अमूल्य जीवन खो दिया।

इसके विपरीत हेमू को बहुमुखी अराजकता का सामना करना पड़ा। अफगान सामन्तों में न तो कोई एकता थी और न एकमत। जब कि शेरशाह अफगानों की एक सम-सेना का नेतृत्व कर सका, हेमू को एक विषम-सेना लेकर लड़ना पड़ा। शेरशाह के अपने सैनिक अफगानों से जातीय तथा धार्मिक खून के सम्बन्ध के बन्धन थे, जबकि हेमू को, जो न तो राजपूत था और न अफगान, अपना मार्ग निर्धारित करने के लिए और उनकी सहायता से दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के लिए लड़ना पड़ा। उसको एक के बाद दूसरी विजय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राप्त होना यह प्रकट करता है कि वह उनके बीच कितना लोक-प्रिय था। अकबर के यश और कीर्ति के कारण, जो उसने गाजी बन जाने के पश्चात् प्राप्त की, हेमू की सफलताओं को निस्संदेह धक्का पहुँचा। अकबर के दरबारी लेखकों ने हेमू पर विष उगलने के लिए अपना सम्पूर्ण शब्दज्ञान समाप्त कर दिया था; फिर भी अपने सम्राट की प्रशंसा करने के लिए अधिक उत्साह ने उनको ऐसे विवरण लिखने के लिए बाध्य कर दिया, जिससे हेमू की ज्योतिर्मयी कीर्ति प्रस्फुटित होती है।

हेमू की पराजय के कल्पनात्मक कारण बताये गए हैं। वह पागलपन के लगभग-निकट, अभिमानी कहा गया था। उस पर इस्लाम के आदेशों को भंग करने का भी आरोप लगाया गया था। उसे अफगान सामन्तशाही, जो उसको त्यागने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे, समूल नष्ट करने के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था। लेकिन ये सब आरोप बिना प्रमाण के, आधार-हीन तथा "द्वैषयुक्त" है। वास्तविक तथ्य, एक प्रसिद्ध-इतिहासकार डा० त्रिपाठी द्वारा एक वाक्य में कहा गया है।

"उसकी पराजय के कारण थे—उसकी सशस्त्र सेना का बन्दी बना लिया जाना और वह आकस्मिक तीर, जिसने उसे बेहोश कर दिया तथा उसकी सेना में आतंक फैला दिया। उसकी पराजय आकस्मिक थी और अकबर की विजय दैवी थी।" यह सच है कि यदि यह दुर्घटना न हुई होती, तो मुगल पराजित हुए बिना नहीं रह सकते थे। उनका केवल १० हजार घुड़सवारों का ही अग्रदल था जो हेमू की प्रभावशाली सेना के विरुद्ध संघर्ष कर रहा था और जो ऐक्य स्थापित करने वाली एक ही शक्ति थी, जिसमें हेमू के विलक्षण व्यक्तित्व की झलक थी। यह भी सत्य है कि अपने अंतिम आक्रमण के अवसर पर हेमू आवश्यकता से अधिक उत्साहित हो गया था, जबकि शत्रु को केवल एक अग्रदल समझकर वह आगे बढ़ गया और शीघ्र विजय प्राप्त करने के हेतु अपने अमूल्य जीवन को संकट में डाल दिया। यदि उसने अपने हाथियों को आगे भेज दिया होता और अपने सेना नायकों को पहले आक्रमण करने दिया होता, तो वह उन अविवेकपूर्ण धर्नुधारियों के घातक संघर्ष से बच जाता, जिन्होंने प्राक्रम के अन्तिम कार्य के रूप में कभी दायें और कभी बाएं तीर चलाए थे। लेकिन दैव ने अकबर के भाग्य का साथ दिया और एक ही प्रहार में राजनैतिक शतरंज के मैदान से उसका अकेला प्रभावशाली शत्रु लुप्त हो गया। हेमू के शहीद होने से भारत में मुगलों की प्रभुता स्थापित होने और अकबर के महानता से शिखर पर पहुँचने के लिए मार्ग खुल गया। जो कुछ भी हुआ या होता, यह सत्य है कि हेमू ने एक गौरवमय जीवन व्यतीत किया और उसका संक्षिप्त, लेकिन घटना पूर्ण सैनिक जीवन संसार के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट—'क'

प्रार्थना-पत्र की प्रतिलिपि

धर्म मित्र साधू किशोरी शरन प्राचीन निवासी कानौड उर्फ महेन्द्र गढ़ की ओर से सर्वश्रेष्ठ दीवान बहादुर सर पंडित दया किशन साहब कौल (के. वी. ई.) (सी. आई. ई.) प्रधान मंत्री रियासत पटियाला की सेवा में कस्बा कानौड की कानूनगोई व नानकार के हक के सम्बन्ध में प्रेषित प्रार्थना-पत्र की प्रतिलिपि।

"शुभचिन्तक ८ अप्रैल १९२१ को स्थान पटियाला में पत्र द्वारा राय बहादुर पंडित पुरोहित गोपी नाथ जी एम० ए०, (सी० आई० ई०) मंत्री, जयपुर मंत्री मंडल, से भेंट करके सम्मानित हुआ था तथा उल्लिखित विषय में वैधानिक रूप से प्रार्थनापत्र प्रेषित किया था, और उसके समर्थन में एक प्रार्थना पत्र भार्गव जनरल रजिस्टर्ड सभा आगरा से मंत्री ने जनवरी १९२२ में भेजा था। श्री मान जी ने उस पर पर्याप्त ध्यान देकर नारनौल की निजामत से मिसिल मंगवाई थी। निवेदन यह है कि यह हक सम्राट अकबर के राज्यारोहण के समय प्रदान हुआ है। जिसको ३६७ साल का समय हुआ। अकबरी राजाज्ञा (फरमान) में ११ हजार प्रति वर्ष अंकित हैं और उसके साथ अन्य अधिकार भी थे। यह अधिकार अन्य सरकारों के समय में भी, जो कानौड पर अधिकार पाए हुए थे, पात्रों को प्राप्त रहे। परन्तु पटियाला शासन के अधिकार पाने पर यह अधिकार कम होकर कुछ वर्षों तक प्राप्त रहा, जैसा कि मिसिल से स्पष्ट होगा। अब निवेदन यह है कि............वह इलाका पटियाला के नारनौल स्थित ढोसी पर्वत में स्थित पंचायती इमारत भार्गवों के मन्दिर, जिसकी पूजा व भोग इत्यादि के व्यय की सहायतार्थ धन पटियाला सरकार प्रदान करती रही व वैसी ही अन्य पंचायती इमारत चरनकुंज, जो अलवर में डेहरा में स्थित है........अर्थात जन्म स्थान महात्मा शामचरन दास आचार्य, जिनके सहायक महाराज अलवर हैं, और जिन्होने कुछ समय पहिले ही डेहरा तक यात्रियों की सुविधा के लिए पक्की सड़क तैयार करा दी है, के विस्तार व पूरा करने हेतु धन भार्गव जनरल सभा को प्रदान किया जावे। और भविष्य में वार्षिक धन पहली रकम में सम्मिलित करके मन्दिर ढोसी के अतिरिक्त पूजा के व्यय हेतु जारी की जावे। ऐसा करने से श्री दरबार पटियाला का पुन्य बढ़ेगा और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हकदार अपने प्राचीन हक के पाने से वंचित न रहेंगे । द्वितीय, आप जैसे प्रतिष्ठित व सम्मानित व धर्मपालक अधिकारी से इस बात की पुष्टि करना है कि आज कल लोग सांसारिक उन्नति की ओर अधिक आर्कषित हो रहे हैं और आध्यात्मिक उन्नति को पूर्णतः भुला बैठे है और विश्वास भी नहीं करते हैं, (कि) महात्मा नवल दास जी योगबल से कैसे विशाल स्थूल शरीर को सूक्षम शरीर बना कर बन्दी से गृह से निकल गए। महात्मा नवल दास जी की इस आध्यात्मिक शान्ति का उल्लेख दो विविध स्थानों पर पूर्व समय का मिलता है—एक हेमू के भतीजे महीपाल की सन्तान, जो कानौड में आवाद रही और अब भी है, के कागजात में दूसरे अनन्य रसिक माल पुस्तक जो राधा वल्लभी सम्प्रदाय वृन्दावन के यहाँ है, में उल्लिखित है । मानों इस विषय में दोनों एक मत है । इन दो लेखों का प्रमाण भी इन दोनों बातों से भली प्रकार सिद्ध है । प्रथम तो अकबर जैसे भाग्य शाली के विषय में मिस्टर गिरट इत्यादि इतिहासकारों ने कुछ वाक्य लिखे हैं ।

अतः ऐसे मुगल शहन्शाह का अपने धर्म अवलम्बियों से निडर होकर राधावल्लभी तिलक मस्तक पर लगाना, हाथ में तुलसी की माला, गले में तुलसी की कन्ठी और चन्द्र का होना, क्या महात्मा नवल दास जी की आध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव नहीं समझा जावेगा, विशेष कर ऐसी दशा में जब कि साधारण हिन्दू भी तिलक लगाने में संकोच करते हैं। महान अकबर का यह हुलिया तथा वैष्णवी वेश भूषा असम्भव बातों में से था। राज्य जब अकबर के हाथ में आया और महात्मा नवल दास जी से भेंट हुई तो वह पूरे १४ वर्ष का भी न था। महातमा नवलदास जी का........देख कर समझ लिया कि इससे बढ़कर और क्या सिधाई हो सकती हैं।

अतः अकबर के हृदय पर महात्मा जी के चमत्कार का इतना महान प्रभाव पड़ा कि उसने राधा वल्लभी रूप धारण कर लिया । इस रूप में अकबर के चित्र मारशडन इत्यादि बहुत इतिहासों में दिए हुए हैं । द्वितीय, हेमू अकबर का प्राचीन (पुश्तैनी) शत्रु था । अकबर के पिता हुमायूँ को शेरशाह ने हिंदुस्तान से निकाल दिया था और जब हुमायूँ ईरान के शाह से सहायता लेकर हिन्दुस्तान में आया तब उस समय शेरशाह के राज्य पर २२ भीषण युद्धों का बिजेता हेमू ही अधिकार किए हुए था । इसके विषय में अबुल फजल ने लिखा है 'अलहक हर आँचे कि हेमू अज वक्त मुसादत करदा फरमांखायान रा दर आंवक्त मैयस्सर न बूद बूद अर्थात वास्तव में हेमू ने सौभाग्य से जिस किसी वस्तु से मित्रता की वह उस समय बादशाही को भी प्राप्त न थी' । अतः ऐसी दशा में अकबर के संरक्षक (अतालीक) बैरम खाँ के आदेश से हेमू के अनुयाइओं के साथ जो अन्याय हुआ वह भी इतिहास बतलाता है । इन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सब बातों के होते हुए भी हेमू के भतीजे महीपाल के पुत्र नथमल को कानूनगोई का मनसब व ग्यारह हजार रुपया वार्षिक आय की जागीर प्रदान करना क्या महात्मा नवल दास जी की (के) उस चमत्कार को प्रमाणित नहीं करता जैसा कि उन दोनों प्राचीन लेखों से स्पष्ट होता है। महीपाल का नाम तीन विभिन्न लेखों[1] में उल्लिखित है और दो लेखों से हेमू का भतीजा होना प्रमाणित है। असली अकबरी फरमान मौजूद है। उसमें नाथमल पुत्र महीपाल लिखा है। परन्तु हस्तलिखित पुस्तक में शिकस्त लिपि में महीपाल (…………) लिखा था। नकल करने वालों ने थरपाल लिख दिया। थरपाल कोई नाम ही नहीं। महीपाल की सन्तानों के पुराने वंश वृक्ष में 'मूरसे आला (सर्वश्रेष्ठ पूर्वज ; महीपाल लिखा है।……………………कागजात स्वयं उपस्थित होकर आप को दिखा दिए जावेगे। चूँकि धर्म मित्र पटियाला सरकार की प्रजा में से महीपाल के वंश से है और पिता जयपुर में ‥ ………हुए। अतः दोनों रियासतों का हृदय व जान से शुभ चिन्तक प्रार्थना करता है। यहाँ भी एक प्रार्थना पत्र रियासत जयपुर के अधिकारियों की सेवा में कृपा कर प्रस्तुत की गई। उससे यहाँ के महात्माओं की शक्तियों व चमत्कारों का शुभ चिन्तक होने के प्रमाण हेतु प्रस्तुत किया गया। एक प्रति उसकी भी आपके अवलोकनार्थ संलग्न है। इति।

१—सन १५५९ ई० के लिखे सम्राट अकबर के दान-पत्र में महिपाल धूसर लिखा हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट—ख

हेमचन्द्र विक्रमादित्य विषयक

श्री राहुल सांकृत्यायन की खोज[1] व उसकी समीक्षा

१—शेरशाह इत्यादि के विषय में..............................।

× × ×

२—"प्राचीन काल से ही व्यापारियों के सार्थ (कारवाँ) और देशों की तरह भारत में भी चलते थे। कितने ही सार्थवाह उस समय लखपती करोड़पती थे। माल से भरी उनकी नावें हमारे देश की नदियों और समुद्रों में चलती थीं। जहाँ नाव की सुविधा नहीं थी, वहाँ स्थल-मार्ग पर व्यापारी बैलगाड़ियों और बैलों पर माल लादे एक जगह से दूसरी जगह उन्हें बेचने जाते थे। कम्पनी के राज्य में भी बलिया के रौनिवार सार्थवाह बैलों पर कपड़े लादकर नैपाल की राजधानी काठमाण्डू पहुँचते थे। साधारण सार्थवाह की चीजें साधारण होती थीं। कितने ही रौनियार गाढ़ा (खादी) का धुला, कोरा या रँगा कपड़ा नैपाल ले जाते। सन् १८५० से कुछ साल पहले उनका बहुत सा माल बिका नहीं। माल लौटा लाना उनके लिए घाटे की चीज थी, इसलिए वह उसे बेचने के लिए वहीं रह गये। आज भी उनके वंशज काठमाण्डू में रहते हैं। श्री शिवप्रसाद जी रौनियार उनके मुखिया हैं। विवाह सम्बन्ध वे बिहार या उत्तर प्रदेश के रौनियारों में करते हैं, नहीं तो वह वैसे ही नैपाली हैं, जैसे दूसरे।

रौनियार पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के सार्थवाह हैं। शिव प्रसाद के पूर्वजों की तरह उनमें कुछ हजार पूँजीवाले भी व्यापारी थे, और दूसरे लाखों के स्वामी भी, जिनकी कोठियां चटगांव और समुद्र के कितने ही और बन्दरों में थी। अपने प्रदेश के बड़े-बड़े शहरों में भी उनका कारबार होता था। सार्थवाह का काम वे लोग नहीं कर सकते थे, जिन्हें कि हम आजकल बनिया समझने के आदी हैं। सार्थ को जिन राज्यों में से गुजरना पड़ता था उनमें सभी अपने यहाँ शान्ति स्थापित करने में समर्थ नहीं थे। जहाँ समर्थ शासक थे, वहाँ सार्थवाह भेंट पूजा देकर अपना काम बनाते थे। जहाँ अशान्ति थी, वहाँ अपनी

१—सरस्वती मासिक पत्रिका में प्रकाशित लेख—मई १९५६ : पृ० सं० ३०९—३१३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रक्षा का भार वे खुद अपने ऊपर लेते थे। इसके लिए वे सैकड़ों और कभी हजारों की संख्या में चलते थे। उनके पास तलवार-भाले, तीर धनुष ही नहीं, बल्कि उस समय का सबसे जबर्दस्त हथियार पलीतेदार बन्दूकें भी होती थीं। नरम कलेजे वालों का सार्थ में गुजर नहीं था। इसलिए बैलों पर लादने, बैल-गाड़ियों को चलाने के लिए वही जवान लिये जाते, जो मौका पड़ने पर सिपाही बन जाते। भोजपुरियों में सिपाहीपन की स्वाभाविक आदत थी।

सहसराम का एक ऐसा ही रौनियार सार्थवाह था, जो अपने प्रदेश में धन-वैभव, उदारता और बहादुरी के लिए ख्याति रखता था। मामूली शासक नहीं, बल्कि अपने-अपने इलाकों के प्रभु भी उसकी इज्जत करते और समय-समय पर वह सार्थवाह अपने धन से उन्हें मदद करके अनुगृहीत भी करता। यदि शेरशाह राजा होते हुए भी फावड़ा भाँज सकता था, तो करोड़पती सार्थ-वाह भी साधारण बैल लादनेवाले अपने आदमी के सभी कामों को करने के लिए तैयार था। उसने अपनी जवानी में यह किया था, और चाहता था कि उसका लड़का भी इसे अच्छी तरह सीखें। इतने भारी कारबार के लिए विद्या पढ़ना बहुत आवश्यक है। सार्थवाह ने अपने लड़के को उसे भी सिखलाया था, और कई बार समुद्र (चट्टग्राम) की ओर जानेवाले नदी सार्थों के और कितनी ही बार स्थल की बैलगाड़ियों के सार्थों के साथ भी भेजा था। तरुण ने एक ओर अपनी विद्या-बुद्धि से अपने पिता को प्रसन्न किया था, तो दूसरी ओर अपनी बहादुरी को उसने कई बार डाकुओं के सामने दिखलाया था। इस लड़के का नाम हेमचन्द्र था जिसे प्यार से लोग हेमू भी कहा करते थे।

३—इधर पिता के स्थान को हेमचन्द्र ने सँभाला, और उधर शेरखाँ भारत के छत्रपति बनने के प्रयत्न में दूर तक आगे बढ़ चुका था, और उसने सहसराम को अपनी राजधानी बनाया था। शेर खाँ गुणियों का पारखी था, और हमेशा उनको खोज निकालने की फिक्र में रहता था। हेमचन्द्र कैसे उनकी नजर से ओझल हो सकता था? उसने बुलाकर हेमचन्द्र को अपना कोश-विभाग सौंप दिया। वह यह जानता था कि हेमचन्द्र में किसी भोजपुरी से कम युद्ध की कला की निपुणता नहीं है। पर राज्य के लिए कोष सेना से कम आवश्यक नहीं था। हेमचन्द्र ने कोष का इतनी योग्यता से प्रबन्ध किया कि शेरशाह की बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में भी वह कभी खाली नहीं हुआ। हुमायूँ का पीछा करते हुए शेरशाह कन्नौज, दिल्ली और राजस्थान के रेगिस्तानों तक पहुँचा। वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि उसके सैनिकों को इस महीने का वेतन अगले महीने मिले। और हेमचन्द्र कुबेर भण्डारी थे। कोष क्यों कभी खाली होने लगा।

अपनी कार्यदक्षता के साथ साथ हेमचन्द्र शेरशाह का बहुत विश्वासपात्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी था। वह शेरशाह की सभी सफलताओं को अपनी ही सफलता समझता था। शेरशाह मुसलमान था और हेमचन्द्र हिन्दू, लेकिन दोनों अपने को एक देश और आदर्श की सन्तान मानते थे। शेरशाह ने जिस तरह दिल खोलकर हिन्दुओं को आगे बढ़ाया था और सदिओं से चले आते भेद भाव को अपने यहाँ स्थान नहीं दिया था, उसके कारण सभी हिन्दू शेरशाह के भक्त हो गए थे : भोजपुरी तो उसे अपने ही जैसा भोजपुरी मानते थे इसलिए उसके साथ विशेष आत्मीयता रखते थे । यदि कम्पनी की सेना के साथ-साथ भोजपुरी सिपाही कलकत्ता से पेशावर तक पहुँचे थे, तो इस काम से उन्होंने चार सौ वर्ष पहले शेरशाह के समय को ही दोहराया था।

१५३९ ई० में शेर खाँ शेरशाह का नाम धारण कर गौड़ में तख्त पर बैठा। १५४० ई० में हुमायूँ भारत छोड़ कर भागा। हुमायूँ के भागने के थोड़े ही दिनों बाद शेरशाह बंगाल में सिंध तक का बादशाह बन गया। जहां उसका शासन हुआ, वहा खुशहाली और शान्ति व्यवस्था के स्थापित होने में देर नहीं हुई। उनमें काफी हाथ हेमचन्द्र का भी था। शेरशाह को पांच ही साल भारत का अधिराज रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कालिंजर में अकस्मात् बारूद में आग लगने से शेरशाह को प्राण खोना पड़ा। उससे दिल्ली नहीं, अपना सहसराम प्यारा था, यह सभी जानते थे। इसलिए उसे वहीं लाकर दफनाया गया। आज भी तालाब के बीच में अपने विशाल मकबरे के भीतर वह बहादुर सो रहा है, जिसने अकबर का पथ-प्रदर्शन किया। कुछ बातों में यदि अकबर बढ़ चढ़ कर था तो कितनी ही बातों में शेरशाह भी।

शेरशाह के मरने के बाद उसका पुत्र इस्लाम शाह गद्दी पर बैठा। उसके नौ वर्ष (१५४५-५४ ई०) के शासन में शेरशाह की शासन-व्यवस्था चलती रही और किसी हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं रहा। योग्यता का ज्ञान कराना प्रजा को खुश रखना शासन का ध्येय था। इस सारे काल में हेमचन्द्र को और भी अपना जौहर दिखलाने का मौका मिला। पहले शेरशाह की छाया में होने के कारण वह उतना प्रकाशमान नहीं दीखता था, अब वह शासन का सबसे बड़ा स्तम्भ था। भू-कर व्यवस्था में ही नहीं, बल्कि सामरिक सूझ-बूझ में भी वह असाधारण समझा जाता था। हेमचन्द्र के बिना कोई काम पूरा नहीं समझा जाता था। इस्लामशाह अपने पिता के इस योग्य आमात्य को बड़े आदर की दृष्टि से देखता।

\+ + +

४—इस्लामशाह के मरने के बाद घर में फूट पड़ गई। उसके नाबालिग पुत्र को मारकर शेरशाह के भतीजे आदिल शाह ने गद्दी सँभाली। हेमचन्द्र को यह पसन्द नहीं आया, लेकिन कुछ करना संभव नहीं था। पठानों के आपसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झगड़े, से जो कमजोरी भीतर पैदा हुई उससे वह और भी चिन्तित था। हेमचन्द्र की योग्यता को देखकर आदिलशाह ने उसे अपना वजीर और सेनापति बनाया। घर में पठानों ने आग लगा दी थी, इसलिए हेमचन्द्र को पहले बिहार को सँभालना था। आखिर वहीं की सेना सूरी वंश की सेना का मुख्य अंग थी। दिल्ली में हेमचन्द्र के न रहने पर वह अरक्षित हो गई, और हुमायूँ ने आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। इसके छ: ही महीने बाद (१५५५ में) ? हुमायूँ पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर दिल्ली में मरगया और उसके १३ वर्ष के पुत्र अकबर को बैरम खाँ की अतालिकी में गद्दी सँभालिनी पड़ी। हेमू अपने वीरों की सेना लेकर दिल्ली की तरफ दौड़ा और मुगलों को भागने में ही खैरियत मालूम हुई।

हेमचन्द्र को मालूम था कि जिस वंश के लिए वह लड़ रहा है, वह अब इस योग्य नहीं है कि इस बड़े भार को अपने कन्धे पर उठा सके। सभी सूरी नहीं बल्कि सभी पठान शाहंशाह बनने के लिए तुले हुए थे। ऐसी स्थिति में सेना का विश्वास डिग सकता था। उसके सेना नायकों और सैनिकों ने जोर दिया, और हेमचन्द्र विक्रमादित्य के नाम से १५५५ ई० ? दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। पिथौरा और जयचन्द के समय खोये सिंहासन को फिर हेमचन्द्र के रूप में हिन्दू शासक मिला। अब भी मुगल शक्ति का उच्छेद नहीं हुआ था। यदि पठानों में शेरशाह के समय की एकता होती तो हेमचन्द्र को यह कदम न उठाना पड़ता। पठान भी उस पर विश्वास रखते थे इसलिए उसके झण्डे के नीचे लड़ने (के) लिये तैयार थे। हेमचन्द्र ने मुगलों की सेना को हार पर हार दी थी। तुगलकाबाद में हेमू की सफलता साधारण नहीं थी। लेखक के अनुसार बड़े-बड़े जत्थेवाले जंगी तजर्बेकार अफगान और जंग के भारी सामान राजपूतों, पठानों और मेवातियों की ५० हजार जबर्दस्त फौज एक हजार हाथी, ५१ दुर्गध्वंसक तोपें, ५०० घड़नाल और इँद्दनाल जन्बूरक उसके साथ थे। यह विशाल सेना अपने स्थान से चली और रास्ते के मुगल हाकिम को रौंदती हुई दिल्ली पहुँच गई।

आखिरी फैसला पानीपत के मैदान में हुआ, जहाँ अकबर का सेनापति खानेजमा अली कुली खाँ सीस्तानी अपनी फौज लिये खड़ा था। इस युद्ध के बारे में शम्शुल उलेमा मौलाना आज़ाद ने अपनी 'दरबार अकबरी' में लिखा है—"हेमू अपने हवाई नामक हाथी पर सवार हो सेना के मध्य को सँभालने खड़ा फौज को लड़ा रहा था। अन्त में मैदान का रंग-ढंग देखकर उसने हाथी हूल दिये। काले पहाड़ों ने अपनी जगह से हरकत की, और काली घटा के आगे अकबरी नमकख्वार पीछे हटे। भागे लेकिन अपने होश-हवास के साथ। काले पानी की बाढ़ को उन्होंने रास्ता दिया। लड़ते-भिड़ते हटते

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चले गये। लड़ाई के समय सेना का रुख और नदी का बहाव एक सा होता है, जिधर को फिर गया। उधर चला जाता है। शत्रु के हाथियों की पाँती बादशाही फौज के एक पार्श्व को रेलती हो गई। खानेजमाँ अपनी जगह खड़ा था, और सेनापति की दूरबीन से चारों तरफ नजर दौड़ा रहा था। उसने देखा कि काली आँधी जो सामने से उठी बराबर को निकल गई। अब हेमू की सेना के मध्य को लिये खड़ा था। एकाएक सेना को ललकार कर हमला किया। शत्रु हाथियों के घेरे में था उसके चारों ओर बहादुर पठानों का झुंड था। उसने फिर भी घेरे को ही रेला, तर्क तीरों की बौछार करते हुए बढ़े। उधर से हाथी तलवार सूजें में फिराते और जंजीरें झुलाते आगे आये। हाथियों के हमले को हौसले और हिम्मत से रोका। वह तैयार होकर आगे बढ़े। जब देखा कि घोड़े हाथियों से बिदकते हैं, तो कूद पड़े और तलवारें खींचकर शत्रु की पाँतियों में घुस गये। उन्होंने तीरों की बौछार से काले राक्षसों के मुँह फेर दिये और काले पहाड़ों को मिट्टी का ढ़ेर सा बनादिया। अद्भुत घमासान रन पड़ा। हेमू की बहादुरी तारीफ के लायक है। वह तराजू बाट का उठाने वाला दाल-चपाती का खाने वाला हौदे के बीच में नंगे सिर खड़ा था। सेना की हिम्मत बढ़ा रहा था।............जीत और हार भगवान के हाथ में है।

शादीखान पठान जो हेमू के सरदारों की नाक था, कटकर मिट्टी पर गिर पड़ा। सेना अनाज के दानों की तरह खिड़ गई। फिर भी हेमू ने हिम्मत न हारी। हाथी पर सवार चारों तरफ फिरता था। सरदारों के नाम ले-लेकर पुकारता था कि समेटकर उन्हें फिर एकत्रित कर ले। इतने में एक मौत का तीर उसकी आँख में लगकर आर पार हो गया उसने अपने हाथ से तीर खींचकर निकाला और आँख पर रूमाल बाँध लिया, मगर घाव से इतना बेहोश और बेकरार हुआ कि हौदे में गिर पड़ा। यह देखकर उसके अनुयायियों की हिम्मत टूट गई। सब तितर-बितर हो गये।

"पानीपत का मैदान अकबर के हाथ में रहा। खानेजमा ने मुगल सल्तनत की हिन्दुस्तान में नींव रखदी। शुक्रवार मुहर्रम महीने की दूसरी तारीख हिजरी सन ९६४ (६ नवम्बर १५५६ ई०) का पानीपत का इन भारत के भाग्य के निपटारे की तारीख है।'

सेना भग गई। तुर्कों ने हाथी को घेर लिया। हेमचन्द्र अब उनके बन्दी थे। उन्हें अकबर के सामने ले जाया गया। किसी सवाल का जवाब देना हेमचन्द्र ने अपनी शान के खिलाफ समझा। उन्हें अफसोस यही हो सकता था कि युद्ध क्षेत्र से मैं जिन्दा क्यों यहां आया। बैरमखाँ ने अकबर से कहा कि अपने हाथ से इस काफिर को मारकर गाजी की पदवी धारण कीजिए। अकबर ने मरणासन्न के उपर तलवार उठाने से इन्कार कर दिया। यदि अकबर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभी १४ वर्ष का छोकरा न होता और उसका ज्ञान और तजुर्बा परिपक्व होता तो इसमें शक नहीं कि हेमचन्द्र को वह अपनी तरफ करने की कोशिश करता, और हेमू अकबर के नौरत्नों में होते।

हेमचन्द्र को मुसलमान इतिहास कारों ने बक्काल (बनिया) लिखा है। मौलाना आजाद ने उन्हें दूसर बनिया कहा है। दूसर बनिया आज कल अपने को भार्गव ब्राह्मण कहते हैं। अकबर के पुत्र जहाँगीर के समकालीन इतिहास कार हेमचन्द्र के जन्मस्थान के बारे में कोई निश्चित बात नहीं बतलाते। पिछले इतिहासकारों ने उन्हें पश्चिम का ही कोई बनिया माना है। परन्तु पूर्वी उत्तर-प्रदेश और बिहार के रौनियार वैश्यों में दूसरी ही परम्परा पाई जाती हैं जो अधिक विश्वसनीय मालूम होती है। उनके कथन के अनुसार हेमचन्द्र रौनियार थे। सहसराम के आसपास के ही रहने वाले थे, और अपनी योग्यता से इतने ऊँचे पद पर पहुँचे थे। श्री रामलोचन शरण 'विहारी' स्वयं रौनियार हैं। उन्होंने लेखक को बतलाया कि उनके यहाँ स्त्रियाँ विशेष समयों में हेमू के गीत गाती हैं। मैंने उनसे उन गीतों को जमा करने के लिए कहा। ऐसे महत्त्व पूर्ण गीतों की गायिकाएँ अब कुछ वृद्धा ही रह गई है। जो दिन पर दिन खतम हो रही हैं। हेमचन्द्र का भोजपुरी भाषी बिहारी होना अधिक विश्वसनीय इसलिए भी मालूम होता है कि शेरशाह की प्रभुता का आरंभ और आधार भोजपुरी क्षेत्र था। शेर शाह और उनके वंशजों का यहाँ के लोगों को अधिक विश्वसनीय समझना स्वाभाविक था। हेमचन्द्र दाल-चपाती खाने वाले बनिये नहीं थे। रौनियार आज भी माँस मछली के प्रेमी है, और जैसा पहले कहा गया है, सार्थवाह होने के कारण उनमें एक सैनिक की हिम्मत थी। भोजपुरी इलाके का तो हरएक जाति का तरुण लाठी और हिम्मत का धनी होना है।

State

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समीक्षा

श्री राहुल जी को हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सभी जानते हैं; परन्तु इतिहास अन्वेषण में योग देने का श्री राहुल जी का, हेमू विषयक लेख सम्भवत: पहला प्रयास है। इसको पढ़कर प्रतीत होता है कि राहुल जी प्रचलित लोक गीतों के आधार पर तथा कुछ व्यक्तियों के कथनों के अनुसार इस निश्चय पर पहुँच गए हैं कि हेमू अथवा हेमचन्द्र रौनियार थे, और सहसराम के आसपास के ही रहनेवाले थे। राहुल जी का यह कथन कि अकबर के पुत्र जहाँगीर के समकालीन इतिहासकार हेमचन्द्र के जन्म स्थान के बारे में कोई निश्चित बात नहीं बतलाते, यह ठीक नहीं है। अकबर के समकालीन इतिहासकार व लेखकों ने स्पष्टत: हेमू को रिवाड़ी का निवासी बताया है।

(२) राहुल जी ने शेरशाह व हेमू को समकालीन एवं सहकर्मी बताया है, और शेरशाह की विजयों में हेमचन्द्र का भी काफी हाथ बताया है। परन्तु इसकी पुष्टि तथ्यों से नहीं होती। मुगल तथा अफगान इतिहासकारों ने एक-मत से यह कहा है कि सर्वप्रथम हेमू, इस्लामशाह के शासन काल में, बाज़ार-अधीक्षक के रूप में नियुक्त हुआ था। यदि राहुल जी का कथन स्वीकार करके यह मान लिया जाये कि हेमू शेरशाह के साथ सेना संचालन में भाग ले रहा था, तो उसकी मृत्यु के पश्चात् वह केवल बाज़ार-अधीक्षक का पद स्वीकार नहीं करता।

(३) राहुल जी का यह कथन कि इस्लामशाह के शासन-काल में 'हेमचन्द्र के बिना कोई काम पूरा नहीं समझा जाता था'—भी सत्य नहीं मालूम पड़ता। यह परिस्थिति तो आदिलशाह अथवा अदली के शासन-काल में उत्पन्न हुई थी जब कि अफगान सामन्त तीन विभिन्न दलों में विभाजित होगए थे।

(४) हेमचन्द्र का सर्वप्रथम कार्य क्षेत्र पश्चिम में ही रहा—इस्लाम-शाह की शक्ति का केन्द्र ग्वालियर था न कि सहसराम। बिहार क्षेत्र में हेमू केवल अदली के चुनार में स्थापित हो जाने के पश्चात्, सम्मान पाये। इस क्षेत्र में ही हेमू ने अपनी सैनिक दक्षता व अपूर्व वीरता का परिचय दिया, जिसके फल स्वरूप उसे विक्रमादित्य की उपाधि प्रदान की गई। चुनार के भीषण युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् बंगाल व बिहार में हेमू की धाक जम गई। हेमू ने इस क्षेत्र को अदली के लिए सुरक्षित जान कर वहीं रुकने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की प्रार्थना की। स्वयं हेमू ने पूर्व में करानियों का पीछा किया व पश्चिम में काल्पी तक धावा मारा। अबुलफजल द्वारा वर्णित २२ युद्धों में हेमू ने अधिकतर युद्ध पश्चिमी क्षेत्र में ही लड़े। हेमू का ध्यान सदैव, पश्चिमी क्षेत्रों के प्रमुख शक्ति के केन्द्रों—आगरा, काल्पी, ग्वालियर तथा दिल्ली की ओर रहता था।

(५) दिल्ली व पानीपत के युद्धों के विस्तृत वर्णनों से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि हेमू की सेना में सम्भल (आधुनिक मुरादाबाद जिले में) के शादी खाँ; व अलवर के हाजी खाँ थे। दिल्ली में विजय श्री प्राप्त करने में अलवर के हाजी खाँ का सबसे बड़ा हाथ था। पानीपत के युद्ध में भी शादीखाँ ने प्रमुख भाग लिया। इसके अतिरिक्त हेमू के भानजे रमैया; भगवानदास, व संग्रामखाँ का उल्लेख है। इनमें से कोई भी बिहार क्षेत्र का नहीं था।

(६) हेमू के सेनानायक शादी खाँ व भगवानदास की मृत्यु हेमू के आहत हो जाने के पश्चात् घमासान युद्ध में हुई थी न कि उसके पहले। हेमू की आँख में तीर लगने के समय तक सेना अथवा सेना नायक भी युद्ध में तत्पर थे।

(७) राहुल जी ने अपने लेख में बताया है कि श्री राम लोचन शरण "बिहारी", जो स्वयं रौनियार है, उन्होंने बतलाया कि उनके यहाँ स्त्रियाँ विशेष समयों में हेमू के गीत गाती हैं ऐसे महत्त्वपूर्ण गीतों की गायिकाएँ अब कुछ वृद्धा ही रह गई है। ऐसे गीतों का प्रचलन कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। क्यों कि हेमू ने इसी क्षेत्र में सर्वप्रथम अपनी अद्भुत सैनिक प्रतिभा दिखलाई थी, व इस क्षेत्र के निवसियों को, अदली के आधीन कुछ वर्षों के लिए शान्ति व संरक्षण प्रदान किया था, तो वहाँ के निवासी अवश्य ही उनके गुणगान करेंगे व करते रहेंगे।

(८) उपरोक्त विषयों पर विचार विनिमय करने से राहुल जी के निर्णय तक पहुँचने के लिए कोई अवलम्ब नहीं मिलता। दूसरी ओर प्रस्तुत पुस्तक में दिये गए अबुल फजल, अलबदाऊँनी, नियामतुल्ला, फिश्ता आदि के कथनों से स्पष्ट हो जायेगा कि पानीपन के युद्ध में भाग लेने वाले हेमू का मुख्य कार्य स्थल पश्चिमी क्षेत्र था न कि बिहार, तथा उनका जन्मस्थान अलवर प्रदेश में था न कि बिहार में। स्वयं शेरशाह मुख्यतः "साकिन ए कस्बा नारनौल" था न कि सहसराम का निवासी, यद्यपि शेरशाह का प्रधान कार्य स्थल बिहार ही बन गया था। अस्तु श्रीराहुल जी द्वारा प्रदत्त सामग्री की ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्टि न होने के कारण उनपर पृथक ही प्रकाश डाला जा सकता है। पाठक वृन्द स्वयं ही उसका मूल्य आँक सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्मतियाँ और समालोचनाएँ

DR. RAM KUMAR VARMA, M. A., Ph. D.,
Ex-Hindi Professor, Moscow (USSR.)

'Saket' Phone No. 2816.
Hindi Vibhag.
Vishwavidyalaya, Prayag.

3. 8. 1959.

I have read the treatise HEMU AND HIS TIMES with great interest. It is divided into ten chapters and has a correct historical background. The matter has been gathered from authentic sources and an attempt has been made to make a coherent assessment of the historical events and personalities. The writer has discovered new facts and a co-relation has been established between reasons and realities. He has the capacity for the critical judgment and his conclusions are founded on rationalism and logic.

One fact must be brought into notice. The details of Hemu's biography are missing. The psychological background of Hemu's character and the gradual stages which switched him off from trade into politics should have been gathered and presented with authentic accuracy. For this, recourse should be made into persian records or the writings of the followers of Swami Hit Hari Vansh. Further research into realm of Hemu's mental make-up will improve the book which is a lasting contribution to an important chapter of history.

University of Allahabad,
ALLAHABAD.

Sd/-RAM KUMAR VARMA
Head of Hindi Department.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh